(१२)

मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥

ज्योति शिखा

Sunnut

क्रांति के लिए आव्हान

आवश्यक सूचनाः–

आचार्य श्री रजनीशजी का सारा साहित्य और पुस्तकें जीवन जागृति केन्द्र बम्बई के अन्तर्गत सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। किसी प्रकाशन तथा अनुवाद की सुविधा के लिये बम्बई केन्द्र की लिखित अनुमति नितान्त आवश्यक है।

जीवन जागृति केन्द्र

एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने)

पहला मजला रूम नं. ५३

डॉ. दादाभाई नवरोजी रोड

बम्बई १ फोन २६४५३०

ज्योतिशिखा ग्राहक नं.

प्रिय मित्र,

आप 'ज्योतिशिखा' के ग्राहक है। आपका चंदा m 69 को समाप्त हो गया है। कृपया चंदा रु. 7 वर्ष १, २, मार्च ७० तक के तुरंत भिजवाकर आप अपनी प्रतियां सुरक्षित करवा लें और अन्य मित्रों को भी ग्राहक बनवाकर ज्योतिशिखा के प्रति अपना प्रेम परिचय दें।

मंत्री

जीवन जागृति केन्द्र, बम्बईद्वारा प्रकाशित
आचार्य रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	३–००
क्रांतिबीज	३–००
सिंहनाद	१–५०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–४०
मिट्टी के दिये	३–००
पथ के प्रदीप	४–५०
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	०–४०
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–४०
सूर्य की ओर उड़ान	१–००
प्रेम के पंख	०–७५
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	१–२५
अज्ञात की ओर	१–००
नये संकेत	१–७५

मराठी साहित्य	
साधनापथ	३–००
सिंहनाद	२–००
अहिंसादर्शन	०–५०
अमृतकण	०–५०
क्रांतिबीज	२–५०
प्रेमाचे पंख	०–७५

गुजराती साहित्य	मू. रुपया
साधनापथ	२–००
स्पेशल प्रति	३–००
क्रांतिबीज (भाषा हिन्दी)	२–५०
माटी ना दिवा	३–००
स्पेशल प्रति	३–५०
पंथ ना प्रदीप	३–००
सिंहनाद	१–२५
नवा संकेत	१–७५
अमृतकण	०–५०
अहिंसादर्शन	०–५०
केटलीक ज्योतिर्मय क्षण	०–७५
अज्ञात प्रति	२–००
नवा मनुष्य ना जन्म नी दिशा	०–७५
हुं कोण छुं	२–००
सत्य ना अज्ञात सागर नुं आमंत्रण	१–५०
सूर्य तरफनुं उड्डचन	१–००

अंग्रेजी साहित्य	
पथ आफ सेल्फ रियेलायजेशन	२–२५
हू ऐम आई	३–००
फिलोसाफी आफ नान–वायोलेन्स	०–८०
अर्दन लैप्स	४–५०

पुस्तकें मिलने का पता :
जीवन जागृति केन्द्र,
ईस्टर्न चेम्बर, ३ रा माला, पूना स्ट्रीट, बम्बई–९,

"ज्योति शिखा"

आचार्य श्री रजनीश की
अमृतवाणी का
त्रैमासिक संकलन

- बारहवाँ संकलन
- मार्च, १९६९
- मानार्ह संपादक

प्रो. अरविन्द

*

- मूल्य : वार्षिक रु. ५।–
  एक प्रति रु. १।२५

अनुक्रमणिका

क्रमांक	विषय	संकलक	पृष्ठ
१.	प्रवास कार्यक्रम :	व्यवस्थापक	२
२.	क्या भारत को क्रांति की जरूरत है ? :	श्री निकलंक	३
३.	जीवन और मृत्यु :	श्री अजितकुमार	२६
४.	भारत का दुर्भाग्य :	श्री भीकमचंद्र जैन	४६
५.	आनंद खोज की सम्यक् दिशा :	श्री रमा अरविंद	७१
६.	मित्र ! निद्रा से जागो !	श्री अकलंक	७८
७.	समाचार विभाग : आचार्य श्री का देशव्यापी कार्यक्रम		९२

आचार्य श्री रजनीशजी के आगामी देशव्यापी कार्यक्रम

दिनांक:	स्थान:	कार्यक्रम:	संयोजक.
१५ मार्च. ६९	जबलपुर. शहीदस्मारक भवन.	प्रवचन.	श्री अजितकुमार मंत्री: जीवनजागृति केन्द्र.४५४, हनुमानताल, जबलपुर. फोन नं. २९५७.
२१, २२ तथा २३ मार्च. ६९.	माथेरान.	साधना शिबिर	श्रीमाणिकलाल बाफना. जीवनजागृति केन्द्र, स्पार्टन लग्झुरी, सी. १,२४७-१४, बी. यरोडा, पूना:६. फोन नं. २४११४.
२९, ३०, ३१ मार्च तथा १ अप्रेल. ६९.	पटना.	विश्वहिन्दुधर्म सम्मेलन में प्रवचन.	श्री आर. आर. रस्तोगी, रस्तोगीभवन, कदम कुआं, पटना: ३. (बिहार.) फोन नं. २६७७०.
६ अप्रेल. ६९	जबलपुर. शहीदस्मारक भवन.	प्रवचन.	श्री अजितकुमार, मंत्री: जीवनजागृति केन्द्र ४५४, हनुमानताल, जबलपुर. फोन नं. २९५७.
१०,११ तथा १२ अप्रेल. ६९.	बुरहानपुर.	सत्संग.	श्री नंदकिशोरजी देवडा, अध्यक्ष: नवरात्रि-व्याख्यानमाला, बुरहानपुर. फोन. नं. १५.
१३ तथा १४ अप्रेल. ६९.	खंडवा.	प्रवचन.	श्री कन्हैयालालजी हुमड, अध्यक्ष: लायन्सक्लब, खंडवा. फोन नं. :६६१.

(शेष पृष्ठ १०७ पर देखिये)

क्या भारत को क्रांति की जरूरत है ?

संकलन : **श्री निकलंक, एम. एस. सी.**

क्या भारत को क्रांति की जरूरत है? यह प्रश्न वैसा ही है जैसे कोई किसी बीमार आदमी के पास खड़ा होकर पूछे कि क्या बीमार आदमी को औषधि की जरूरत है? या तो औषधि या मृत्यु इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है या तो क्रांति या मृत्यु। भारत को क्रांति की जरूरत ऐसी नहीं है—जैसे और चीजों की जरूरत होती है, बल्कि भारत बिना क्रांति के अब जी भी नहीं सकेगा। इस क्रांति की जरूरत कोई आज पैदा हो गयी है, ऐसा भी नहीं है। भारत के पूरे इतिहास में कोई क्रांति कभी हुई ही नहीं। आश्चर्य-जनक है यह घटना कि एक सभ्यता कोई पांच हजार वर्ष से अस्तित्व में है लेकिन वह क्रांति से अपरिचित है। निश्चित ही जो सभ्यता पांच हजार वर्षों से क्रांति से अपरिचित है वह करीब करीब मर चुकी होगी। हम केवल उसके मृत बोझ को ही ढ़ो रहे होंगे और हमारी अधिकतम समस्यायें उस मृत बोझ को ढ़ोने से ही पैदा हुई हैं। अगर किसी घर में कोई आदमी मरे और हम उन मरे हुए लोगों की लाशें इकट्ठी करते चले जायं तो पांच हजार वर्षों में उस घर की जो हालत हो जायगी, वह हालत पूरे भारत की हो गयी है। अगर एक घर में मरे हुए लोगों की सारी लाशें इकट्ठी हो जायं तो क्या परिणाम होगा? उस घर में आनेवाले नये बच्चों का जीवन अत्यंत संकटपूर्ण हो जायगा लेकिन इस देश की स्थिति और भी बुरी है। एक घर में लाशें इकट्ठी हों तो निश्चित ही वह घर मरघट हो जायगा लेकिन अगर किसी घर में बूढ़े इकट्ठे हो जायं और पांच हजार वर्ष तक मरें ही नहीं तो उस घर की हालत और भी बदतर हो जायगी। लाशें कुछ परेशानी नहीं दे सकती हैं, मरा हुआ आदमी क्या तकलीफ

दे सकता है? लेकिन अगर बूढ़े इकट्ठे हो जायं—पांच हजार वर्षों के किसी घर में तो उस घर के बच्चे पागल ही पैदा होंगे। उस घर में स्वस्थ मस्तिष्क की कोई संभावना नहीं रह जायगी और जब कोई सभ्यता क्रांति को इनकार कर देती है तो उसकी स्थिति ऐसी ही हो जाती है। जो चीजें मर जानी चाहिएं थीं कभी की, वह जिंदा बनी रह गयीं और उनके जिंदा बने रहने के कारण जो पैदा होना चाहिए था वह अवरुद्ध हो गया है, वह पैदा नहीं हो पाया। बूढ़े मरते हैं इसलिए बच्चे पैदा होते हैं। जिस दिन बूढ़ों का मरना बंद हो जायगा उस दिन बच्चों का पैदा होना भी बंद हो जायगा। कठोर लगती है यह बात। निश्चित ही कहने में अच्छी भी नहीं मालूम पड़ती लेकिन जीवन का नियम ऐसा ही है और उसे समझ लेना उचित है। किसी को विदा होना पड़ता है इसलिए किसी का स्वागत हो पाता है। कोई जाता है इसलिए कोई आ पाता है। लेकिन जो समाज क्रांति को इनकार कर देता है वह चीजों के जाने से इनकार कर देता है और तब नयी चीजें आनी बंद हो जायं तो आश्चर्य नहीं। पुराने के अति मोह के कारण नये का जन्म अवरुद्ध हो जाता है। भारत में नये का जन्म न मालूम कितनी सदियों से अवरुद्ध है।

एक छोटी सी घटना से मैं इस बात को समझाने की कोशिश करूंगा। एक गांव में एक बहुत पुराना चर्च था। उस चर्च की दीवालें जरा जीर्ण हो गयी थीं। उस चर्च के भीतर जाना भी खतरनाक था क्योंकि वह किसी भी क्षण गिर सकता था। हवायें चलती थीं तो वह चर्च कंपता था। आकाश में बादल गरजते थे तो लगता था अब गिरा अब गिरा। उस चर्च के भीतर प्रार्थना करनेवाले लोगों ने जाने की हिम्मत छोड़ दी। चर्च के जो ट्रस्टी थे, जो कमेटी थी, आखिर वह कमेटी मिली। वह भी चर्च के भीतर नहीं, चर्च के बाहर। क्योंकि चर्च के भीतर खड़ा होना तो मौत को आमंत्रण देना था। वह कभी भी गिर सकता था। हालांकि वह गिरता भी नहीं था अगर वह गिर जाता तो भी ठीक था। लेकिन वह न गिरता था और न यह संभावना मिटती थी कि वह कभी भी गिर सकता है। कमेटी के लोगों ने तय किया कि कुछ न कुछ करना जरूरी है। चर्च इतना पुराना हो गया है कि अब प्रार्थना करनेवाले लोग भी उसमें आते नहीं। पास से निकलने वाले लोग भी तेजी से गुजरते हैं कि वह किसी भी क्षण गिर सकता है। क्या करें?

तो उन्होंने चार प्रस्ताव स्वीकार किये। चर्च की कमेटी ने पहला प्रस्ताव यह स्वीकार किया कि यह चर्च इतना पुराना हो गया है कि अब उसे और

आगे जिलाये रखना असंभव है। हम अंतिम चेष्टा कर चुके अब पुराने चर्च को गिराना आवश्यक है और सर्वसम्मति से उन्होंने स्वीकार कर लिया कि पुराने चर्च को गिराना आवश्यक है। फिर उन्होंने दूसरा प्रस्ताव यह किया कि पुराना चर्च गिराना आवश्यक है तो उससे भी ज्यादा आवश्यक यह है कि हम नया चर्च निर्मित करें। एक नया चर्च बनाना आवश्यक है इसे भी सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया गया। तीसरा प्रस्ताव उन्होंने यह पास किया कि नया चर्च जो बनेगा उसमें पुराने चर्च की ही ईंटें लगेंगी। हम पुराने चर्च के दरवाजे ही लगायेंगे। पुराने चर्च के सामान से और पुराने चर्च की उसी जगह पर, और ठीक पुराने चर्च जैसा ही नया चर्च हमें बनाना है। इसे भी उन्होंने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया और चौथा प्रस्ताव यह पास किया कि जब तक नया चर्च न बन जाय तब तक पुराना चर्च नहीं गिराना है।

वह चर्च अब भी खड़ा है। वह चर्च कभी नहीं गिरेगा क्योंकि जो लोग नये को निर्मित करना चाहते हैं उन्हें पुराने को विनष्ट करने का साहस जुटाना पड़ता है। पुराने को विनष्ट किये बिना नये का न कभी निर्माण हुआ है और न हो सकता है। पुराने के विध्वंस पर ही नये का जन्म और सृजन होता है। क्रांति का अर्थ है इस बात की तैयारी कि हम पुराने को हटाने की हिम्मत जुटाते हैं। निश्चित ही खतरनाक है यह तैयारी, क्योंकि हो सकता है कि हम पुराने को गिरा दें और नये को न बना पायें, यह संभावना हमेशा है। यह खतरा हमेशा है कि पुराना गिर जाय और नया न बन सके। यह खतरा हमेशा है कि पुरानी सीढ़ी पैर से छूट जाय और नयी सीढ़ी पैर के लिये उपलब्ध न हो सके। यह खतरा है कि बूढे गुजर जायं और बच्चे न आयें लेकिन खतरे की स्वीकृति का नाम ही क्रांतिकारी मन है। चूंकि पांच हजार वर्षों से हमने इस खतरे में कदम उठाने की हिम्मत नहीं की इसलिए हम क्रांति से नहीं गुजर सके। पुराने में एक सुविधा है, एक सुरक्षा (Security) है। कम से कम है तो। फिर परिचित है, बहुत दिनों का जाना माना है। नये का पता नहीं, कैसा होगा, अपरिचित अनजाना होगा, होगा भी या नहीं होगा यह भी संदिग्ध है। हम बना पायेंगे या नहीं बना पायेंगे यह भी केवल आशा और सपना है। पुराना असलियत है; वह वास्तविक है। नया संभावना है, नया होनेवाला भविष्य है। अतीत हो चुका है, वह है, वह कहीं खड़ा है। भविष्य अभी कहीं भी नहीं है, अंधकार में अज्ञात में है, हो सकता है, नहीं भी हो सकता है।

क्रांति की दृष्टि का अर्थ यह है कि हम अनिश्चित के लिये निश्चित को

छोड़ने का साहस जुटाते हैं। हम अज्ञात के लिये ज्ञात से कदम उठा लेने का साहस जुटाते हैं। हम जो नहीं है उसके लिये उसको मिटाने का साहस जुटाते हैं जो है। क्रांतिकारी दृष्टि का और क्या अर्थ होता है? क्रांतिकारी दृष्टि का अर्थ है एक साहस, ज्ञात से अज्ञात में जाने का, परिचित से अपरिचित में जाने का। जो था, उससे उसमें जाने का जो हो सकता है और नहीं भी हो सकता है। लेकिन यही साहस किसी जाति को जवान बनाता है और जो जाति यह साहस खो देती है वह बूढ़ी हो जाती है।

यह जाति बूढ़ी हो चुकी है। यह जाति कभी की बूढ़ी हो चुकी है। अब तो इस बात की स्मृति ही खो गयी है कि यह जाति कभी जवान थी भी या नहीं। यह पुरानापन इतना पुराना हो गया है और इसके पीछे एक ही कारण है कि हम सुरक्षा के अति मोही हैं। सुरक्षा का जितना ज्यादा मोह होता है क्रांति की संभावना उतनी ही कम होती है। एक नदी हिमालय से निकलती है। गंगोत्री से गंगा बही चली जाती है। प्रति क्षण उसे पुराना किनारा छोड़ देना पड़ता है और प्रति पल पुरानी भूमि छोड़ देनी पड़ती है। अनजान, अज्ञात रास्तों पर उस सागर की खोज चलती है जिसका उसे कोई पता नहीं कि वह कहां है? होगा भी या नहीं होगा? अज्ञात, अनजान रास्ते पर प्रति पल पुराने को छोड़ते हुए नदी आगे बढ़ती चली जाती है। नदी की जो दृष्टि है, वह क्रांति की जीवन दृष्टि है। एक सरोवर भी है, वह पुराने को छोड़ता नहीं। वह कहीं आगे नहीं बढ़ता है। वह घेरा बांधकर वहीं डूबकर बैठ जाता है। उसकी कोई गति नहीं है, वह सुरक्षित है एक अर्थ में। परिचित है जिस भूमि पर है। तट उसका पुराना है, सदा वही जो कल था, परसों भी था। जो परिचित है, वह वहीं सुरक्षित है। उसे कहीं जाना नहीं है। सरिता की जिन्दगी में कुछ जीवन्तता है, गति है और सागर से मिलन है, कोई उपलब्धि है। सरिता दौड़ रही है, नये को जान रही है, नयी हो रही है रोज, नयी धाराएं मिल रही हैं। नया तट, नयी भूमि और एक दिन वह पहुंच जायगी अपने प्रियतम तक, अपने सागर तक। अगर वह रुक जाय तो सागर कभी भी नहीं हो पायेगी, रह जायगी एक छोटी सी नदी जिसकी सीमा थी, जिसका तट था। लेकिन तटहीन, असीम और अनंत सागर से उसका मिलन नहीं हो सकता। वह कभी भी सागर नहीं हो पायेगी। एक सरोवर है छोटा सा, वह भी सरिता हो सकता था लेकिन उसने अनजान और अपरिचित में जाने की हिम्मत नहीं जुटायी। उसने उचित माना कि वह बन्द हो जाय, एक जगह ठहर जाय, वहीं रहे। जीता है वह भी लेकिन सागर

से मिलने को नहीं, केवल सड़ने को। जियेगा और सड़ेगा। उसके जीने का एक ही अर्थ है कि रोज सड़ेगा, रोज वाष्पीभूत होगा, कीचड़ इकट्ठी होंगी, कचरा इकट्ठा होगा, डबरा बनेगा लेकिन उसका जीवन कहीं जाने वाला जीवन नहीं है। रुक गया, ठहर गया (Static) कोई जीवन्तता उसके भीतर नहीं है।

भारत हजारों वर्षों से एक सरोवर बन गया है।, उसकी गति अवरुद्ध हो गयी है। वह ठहर गया है, सुरक्षा में ठहर गया है, रुक गया है ज्ञात के साथ जो जाना माना है। उससे आगे बढ़ने की उसने हिम्मत खो दी है। उसे अपने घर की चार दीवारी के बाहर नहीं जाना है। अगर कभी कोई बच्चे खिड़की से बाहर झांकते हैं तो बूढ़े उन्हें वापस बुला लेते हैं कि घर के भीतर आजाओ, बाहर खतरा है। कभी अगर कोई बच्चे घर की सीढ़ियां छलांग लगा लेते हैं और बाहर के विराट आंगन में जहां अनन्त तक फैला हुआ आकाश है जाने की हिम्मत करते हैं तो बूढ़े उन्हें डराते हैं और कहते हैं, घरमें आजाओ। बाहर वर्षा हो सकती है, धूप है ताप है, फिर बाहर अज्ञात है, दुश्मन हो सकते हैं, घर आजाओ। भीतर आजाओ चार दीवारी में, सब सुरक्षित है। आराम से यहां रहो, खाओ–पियो, सोओ और मरो। बाहर मत जाना। एक सरोवर बना लिया है जीवन को हमने और क्रांति है जीवंत। रोज बदलाहट है जीवन। जितना जीवंत है व्यक्तित्व उतना गतिशील है। गति और जीवन के एक ही अर्थ हैं। क्रांति और जीवन के भी एक ही अर्थ हैं। जीवन में क्रांति की जरूरत है। अगर इसे हम ठीक से पूछें तो इसका अर्थ हुआ जीवन को जीवन की जरूरत है। क्रांति नहीं तो जीवन कहां है? बदलाहट नहीं तो जीवन कहां है? सिर्फ मरा हुआ आदमी बदलना बन्द कर देता है, फिर वह नहीं बदलता है, फिर वह ठहर जाता है। फिर उसका आगे कोई भविष्य नहीं है, फिर है सिर्फ अतीत जो बीत गया वही। आगे कुछ भी नहीं है। आगे आ गया अंत। मरा हुआ आदमी बदलाहट बन्द कर देता है। जिन्दा आदमी बदलता है। बच्चे जोर से बदलते हैं क्योंकि ज्यादा जीवित हैं, बूढ़े बदलना बन्द कर देते हैं क्योंकि वे मृत्यु के करीब पहुंचने लगे। बदलाहट है जीवन का स्वरूप। अगर हम रोज बदल नहीं पाते हैं तो निश्चित ही हम रुक जाते हैं, जीवन के साथ बह नहीं पाते। हम कहीं ठहर जाते हैं और वही ठहराव जड़ता लाता है, वही ठहराव सड़ांघ लाता है, वही ठहराव मृत्यु लाता है।

भारत एक बड़ा मरघट है। वहां हम बहुत दिन पहले मर चुके हैं। मर जाने के बाद का अस्तित्व जो है उसमें हम जीवित हैं। हम प्रेतात्माओं की

भांति हैं जो कभी की मर चुकी हैं लेकिन फिर भी जिन्हे ख्याल है कि वह जिन्दा हैं और जिये चली जा रही हैं। क्या कभी हमने यह सोचा कि क्या कारण है इस अवरोध का? यह क्रांतिविरोधी जीवन कैसे पैदा हो सका, यह जड़ता से भरी हुई स्थिति कैसे पैदा हो सकी? हमने कैसे खो दिया जीवन का स्फुरण? हमने कैसे खो दिया सागर से मिलने की अनंत यात्रा का पथ? हमने कैसे खो दिया नवीन और अज्ञात को जानने का साहस? हम कैसे ठहर गये हैं। जबतक हम वह नहीं समझ लें तबतक क्रांति की क्या रूपरेखा बनेगी?

मैं चार बिन्दुओं पर बात करना चाहता हूं जिनकी वजह से भारत एक सरोवर बन गया है, सरिता नहीं। और सरोवर हो जाना बहुत अपमानजनक है। वह जीवन का अपमान है और परमात्मा का भी। क्योंकि परमात्मा के जगत—में प्रतिपल परिवर्तन है। वहां कोई चीज ठहरी हुई नहीं है। एडिंग्टन कहता था कि मैंने सारा भाषाकोश खोजकर देखा। मुझे एक शब्द बिल्कुल झूठ मालूम पड़ा और वह शब्द है, —ठहराव (Rest)। एडिंग्टन ने कहा कि ठहराव जैसी कोई चीज तो जगत में होती ही नहीं। ठहराव जैसी कोई घटना ही नहीं घटती। सारी चीज परिवर्तन में हैं। प्रतिपल परिवर्तन है, प्रवाह है। जीवन एक बहाव है, वहां ठहराव कहां?

एडिंग्टन मर चुका है अन्य था उससे हम कहते कि आजाओ भारत और तुम पाओगे कि रेस्ट भी कहीं है। चलता होगा सारा जगत तुम्हारा, लेकिन भारत ठहरा हुआ है और न केवल ठहरा हुआ है बल्कि हम उस ठहराव का गुणगान करते हैं, यश गान करते हैं और कहते हैं कि यूनान न रहा, बेबिलोन न रहा, सीरिया न रहा, सारी दुनिया की सभ्यता आयी और गयी। मिश्र अब कहां है? लेकिन भारत अब भी है। हम सोचते नहीं कि इसका मतलब क्या है? इसका मतलब यह है कि जो भी जीवंत थे वे बदलते चले गये, उनकी सभ्यताएं नयी होती चली गयीं, उनके जीवन ने नयी दिशाएं लीं, वे नये होते चले गये और जो नहीं बदले वे अब भी वहीं हैं। वे वहीं खड़े हैं जहां वे कल भी थे, परसों भी थे, हमेशा थे। वे चलना ही भूल गये। लेकिन किन कारणों से आया भारत में यह अवरोध; यह आज विचारणीय हो गया है क्योंकि भारत में क्रांति अपेक्षित है, जरूरी है।

भारत क्यों ठहर गया? ठहर जाना इतना जीवनविरोधी है कि जरूर इसमें कोई बहुत बड़ी तरकीब ईजाद की गई होगी तब हम ठहर पाये हैं, नहीं तो जीवन खुद तोड़ देता है सारे ठहराव को। हमने जरूर कोई बहुत होशि-

यारी की होगी तब हम रुक पाये, अन्यथा रुकना बहुत कठिन है।

भारत ने कौन सी तरकीब की जिससे आदमी अतीतमें ठहर गया और भविष्यमें उसकी गति बन्द हो गयी। भविष्य के आकाश अनजान और अपरिचित के अपरिचित रह गये। हमने कौन सी तरकीब की है? चार बिन्दुओं पर मुझे यह तरकीब दिखायी पड़ती है।

पहला बिन्दु तो यह है कि जीवन की गति के लिए आत्यंतिक रूप से परलोकवादी दृष्टि अत्यन्त खतरनाक और घातक है। अगर कोई जाति निरंतर परलोक के संबंध में विचार करती हो, मृत्यु के बाद जो है उसके संबंध में विचार करती हो तो जीवन अवरुद्ध हो जायगा, जीवन अर्थहीन हो जायगा, जीवन असार हो जायगा। अगर एक आदमी सदा यह सोचता हो कि मरने के बाद क्या होगा तो जीवन से उसकी दृष्टि छिटक जायेगी। अगर एक कौम निरंतर मोक्ष के संबंध में चिन्तन करती हो तो जीवन के संबंध में उपेक्षा हो जाना सुनिश्चित है और जीवन अगर उपेक्षित हो जाय तो जीवन की जड़ कट जाती है। और हम पांच हजार वर्षों से जीवन की उपेक्षा करके जीने की चेष्टा कर रहे हैं। ये जीवन जो चारों तरफ दिखायी पड़ता है—फूलों का, पक्षियों का, मनुष्यों का, यह जीवन जो शरीर से प्रगट होता है यह निन्दित है, यह पाप है, यह पाप का फल है। आप इसलिए पैदा नहीं हुए हैं कि परमात्मा आप पर प्रसन्न है, आप इसलिए पैदा हुए हैं कि आपने पाप किये हैं और आपको पाप की सजा दी जा रही है यहां भेजकर। जगत एक कारागृह है जहां परमात्मा पापियों को सजा दे रहा है क्योंकि पुण्यात्मा फिर जीवन में कभी वापस नहीं लौटते। उनकी आवागमन से मुक्ति हो जाती है। पापी वापस लौट आते हैं। हमने जो धारणा बनायी है जीवन के बाबत वह ऐसी है जैसी किसी ने कारागृह की धारणा की हो। परमात्मा ने इस पृथ्वी को जैसे चुन रखा हो, पापियों को सजा देता है, तो यहां भेजता है। यह जीवन एक पश्चात्ताप है। यह जीवन किसी पाप का पुरस्कार है। यह जीवन सजा है। यह जीवन एक दंड है। तो जीवन जब एक दंड है तो उसे झेल लेने की जरूरत है, उसको बदलने की क्या जरूरत है? मुझे अगर जेल भेज दिया जाय तो मैं जेल की दीवालों को सजाऊंगा, तस्वीरें लगाऊंगा, जीवन के फूल खिलाऊंगा? नहीं, मैं चाहूंगा कि जितनी जल्दी कट जाय यह समय अच्छा और मैं जेल के बाहर निकल जाऊं। मैं जेल की सजावट करूंगा? मैं जेल को सुन्दर बनाने की कोशिश करूंगा? पागल हूं मैं जो जेल को सुन्दर बनाऊं। जेल से मुझे छूटना है, निकल जाना है। जेल से मुझे क्या लेना देना है?

भारत जीवन के साथ कारागृह जैसा व्यवहार कर रहा है। यह बात सोच रहे हैं निरंतर कि कैसे जीवन से मुक्त हो जायें, कैसे आवागमन से छुटकारा हो जाय। मैं अभी भावनगर था। एक छोटी सी बच्ची ने जिसकी उम्र मुश्किल से दस या ग्यारह साल होगी उसने आकर पूछा कि मुझे एक बात बताइए। जीवन से छुटकारा कैसे हो सकता है, मुक्ति कैसे हो सकती है? मैं तो चौंककर रह गया। ग्यारह वर्ष की, दस वर्ष की बच्ची यह पूछती है कि जीवन से छुटकारा कैसे हो सकता है! जो अभी जीवन के घाट पर भी पूरी तरह नहीं आयी। जिसने अभी जीवन की सरिता में छलांग नहीं लगायी। जिसने अभी जीवन के वृक्षों की ऊंचाई नहीं देखी। जिसने अभी जीवन के पक्षियों को उड़ते नहीं जाना। जिसने अभी जीवन के सूरज की रोशनी की तरफ आंखें नहीं खोलीं। अभी वह बच्ची जीवन के मंदिर की दीवार पर ही खड़ी है, मंदिर में प्रविष्ट भी नहीं हुई, और वह सीढ़ियों पर ही पूछती है कि जीवन से छुटकारा कैसे हो सकता है? निश्चित ही किसी ने उसके मन को विषाक्त कर दिया है। अभी से जहर डाल दिया है उसके दिमाग में। अब यह जीवन को जी भी नहीं पायेगी। अब यह जीवन को सुन्दर कैसे बनायेगी? जिस जीवन से छूटना है उसे हम सुन्दर क्यों बनायें? जिस जीवन से छूटना है उसे हम बदलें क्यों?

परलोकवादी इस चिन्तनने भारत की सारी क्रांतिकारी प्रतिभा को छीन लिया है। यह मैं नहीं कहता कि परलोक नहीं है, न मैं यह कहता हूं कि जीवन के बाद और जीवन नहीं है पर मैं यह कहना चाहता हूं कि जीवन के बाद जो भी जीवन है वह इसी जीवन से विकसित होता है, वह इसी जीवन का अंतिम चरण है और अगर इस जीवन की उपेक्षा होगी तो उस जीवन को भी हम सम्हाल नहीं सकते। उसे भी नष्ट कर देगें। वह इस जीवन पर ही खड़ा होगा। वह इसकी ही निष्पत्ति है। अगर कल है कोई तो मेरे आज पर खड़ा होगा और अगर मेरा आज उपेक्षित है तो कल मेरा निर्मित होने वाला नहीं। कल के निर्माण के लिए भी यह जरूरी है कि आज पर मेरा ध्यान हो। कल की फिक्र छोड़ देनी चाहिए, फिक्र करनी है आज की। अगर आज मेरा ठीक निर्मित हुआ और आज की जिन्दगी मेरी आनंद की जिन्दगी हुई तो कल मैं फिर एक नये आनन्द से भरे दिवस में जागूंगा क्योंकि मैंने आज आनंद में जिया है। कल मेरी आंखें फिर एक नये आनंद से भरे हुए जगत में खुलेंगी लेकिन अगर आज मैंने नष्ट किया है तो कल भी मेरा नष्ट हो रहा है। क्योंकि कल आज की ही निष्पत्ति है, आज पर ही विकास है। निश्चित ही जीवन पर अंत नहीं हो जाता,

और जीवन हैं लेकिन वह जीवन भी इस जीवन के निर्माण, इस जीवन के सृजन पर खड़े होने वाले हैं। इस जीवन की हमने उपेक्षा की है और इस भांति हम परलोकवादी तो रहे हैं लेकिन परलोक भी हमने सुधारे हों ऐसा मुझे नहीं मालूम पड़ता है। जो इस लोक को भी नहीं सुधार सकते ऐसे कमजोर लोग परलोक को सुधार सकेंगे इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती।

तो मेरी दृष्टि में परलोकवादी चिन्तन से छुटकारा चाहिए। वह अत्यंतिक बल, परलोक पर नहीं इस जीवन पर जरूरी है। यह जो जीवन हमें उपलब्ध हुआ है उसे हम सुंदर बना सकें, इस जीवन का रस उपभोग कर सकें, इस जीवन से आनंद अवशोषित कर सकें, यह जो अवसर मिला है जीवन का, यह ऐसे ही न खो जाय। इस अवसर को भी हम जान सकें, जी सकें।

रवीन्द्रनाथ मरने के करीब हैं और किसी मित्र ने कहा, 'अब तुम परमात्मा से प्रार्थना कर लो कि दुबारा इस जीवन में न भेजे।' रवीन्द्रनाथ मरते थे लेकिन उन्होंने आंखें खोल दीं। और कहा क्या कहते हो? मैं और परमात्मा से ऐसा कहूं कि दोबारा मुझे इस जीवन में न भेजो? इससे बड़ी परमात्मा की और निन्दा क्या होगी क्योंकि उसने मुझे भेजा था? मैं उससे ज्यादा समझदार हूं कि कहूं कि मुझे न भेजे? नहीं! मेरे प्राणों के प्राण में एक ही गूंज है! एक ही प्रार्थना है कि हे प्रभु। तेरा जीवन तो बहुत सुन्दर था। अगर तूने मुझे योग्य पाया हो तो बार बार वापस भेज देना और अगर तेरा जीवन मुझे सुन्दर नहीं मालूम पड़ा हो तो जिम्मा मेरा है। मेरे देखने की दृष्टि में भूल रही होगी। मेरे जीने के ढंग गलत रहे होंगे। मैं जीवन की कला नहीं जानता रहा होऊंगा। अगर तूने योग्य पाया हो तो वापस मुझे भेज देना। अगर मेरी पात्रता ठीक उतरी हो, अगर मैं तेरी कसौटी पर कस गया होऊं तो मुझे बार बार भेजना। तेरा जीवन बहुत सुन्दर है। तेरा चांद सुन्दर था, तेरा सूरज सुन्दर था, तेरे लोग सुन्दर थे, सब सुन्दर था। अगर भूल कहीं हुई होगी तो मुझसे ही हुई होगी।

ऐसी जीवनदृष्टि चाहिए जीवन से प्रेम करने वाली। जीवनविरोधी (Life Negative) नहीं, जीवन के पक्ष में।(Life Affirmative) जीवन का स्वीकार चाहिए, अस्वीकार नहीं। लेकिन भारत कर रहा है जीवन को अस्वीकार। उस अस्वीकार का फल है कि सैकड़ों वर्षो की गुलामी भोगी। उस अस्वीकार का फल है कि पृथ्वी पर सबसे ज्यादा धन धान्यपूर्ण होते हुए भी हम सबसे ज्यादा दीन और दरिद्र हैं। उस अस्वीकार का फल है कि इतनी बड़ी विराट

शक्ति की सम्पदा पास होते हुए भी हमसे ज्यादा शक्तिहीन और नपुंसक आज पृथ्वीपर कोई भी नहीं है। उस अस्वीकार का फल यह है, और इसका जिम्मा उन सारे लोगों के ऊपर है जिन्होंने जीवन की अस्वीकृति हमें सिखायी, चाहे वे कितने ही बड़े ऋषि हों, चाहे कितने ही बड़े मुनि हों लेकिन जिन्होंने हमें अस्वीकृति सिखायी है उन्होंने हमें आत्मघात भी सिखाया है यह जान लेना। और जितनी जल्दी हम यह जान लें उतना अच्छा है।

एक रूसी यात्री ने भारत के संबंध में एक किताब लिखी है। मैं उस किताब को पढ़ रहा था तो मैंने समझा कि कोई मुद्रण की भूल हो गयी होगी। उसमें उसने लिखा है कि भारत एक अमीर देश है जिसमें गरीब लोग रहते हैं। मैंने समझा कि जरूर कोई भूल हो गयी, लेकिन फिर सोचने लगा तो ख्याल आया कि बात तो शायद ठीक ही है। भारत गरीब नहीं है लेकिन भारत के रहनेवाले दीनहीन और गरीब हैं। उनकी दृष्टि ऐसी है कि उन्हें गरीब बना ही देगी। उनकी दृष्टि ऐसी है कि वे दीन हीन हो ही जायेंगे। अगर यही देश किसी और जीवन्त कौम को मिलता तो आज पृथ्वीपर इस देश से ज्यादा धनी, इस देश से ज्यादा समर्थ और सुखी कोई हो सकता था? लेकिन हम इस देश का क्या फल उठाये? हमने कौन सा धन्यवाद दिया और कौन सी परीक्षा में उत्तीर्ण हुए? हमने क्या किया इस देश के साथ? जीवन के प्रति जो विरोधी हैं वे समृद्ध कैसे हो सकेंगे? वे जीवन की सम्पदा की खोज ही नहीं करते। वे तो जीवन को ढोते हैं बोझ की तरह। वे जीवन को हंसकर स्वीकार नहीं करते, रोते हुए झेलते हैं। हमारे साधु संत वे जो हमें विचार देते हैं उनकी शक्लें जरा आप देखें, वे सब रोते हुए, उदास और सूखे हुए लोग मालूम पड़ते हैं। ऐसे मालूम पड़ते हैं जैसे असमय में कुम्हला गया कोई फूल हो। धूप पड़ी हो और कोई पौधा कुम्हला गया हो। हंसता हुआ संत हमने पैदा ही नहीं किया। हंसते हुए आदमी हमने पैदा नहीं किये; जैसे रोना भी और रोते हुए दिखायी पड़ना भी कोई बहुत बड़ी आध्यात्मिक योग्यता है। लेकिन हम यही मानते रहे हैं। उदास और सूखा हुआ व्यक्तित्व हमें आध्यात्मिक मालूम पड़ता रहा है।

हिन्दुस्तान में कुछ ऐसा समझा जाता है कि स्वस्थ होना गैरआध्यात्मिक होना है। यहां ऐसे साधुओं की परम्परा है जो कभी स्नान नहीं करते क्योंकि वे कहते हैं कि स्नान करना शरीर को सजाना है। स्नान करना शरीर की सेवा करना है। और शरीर? शरीर है पाप का घर, शरीर से होना है मुक्त। यहां ऐसे ग्रन्थ हैं जिनमें लिखा है कि साधु के शरीर पर अगर मैल जम जाय

तो उसे, उसे हाथ से निकालने की मनाही है। अगर वह निकालता है तो वह शरीरवादी (Materialist) है। उसे लगे हुए मैल को निकालना नहीं है क्योंकि शरीर तो मैल का घर है, तुम्हारे निकालने से क्या होगा ? शरीर को सुन्दर बनाने की चेष्टा क्यों ? मजबूरी है कि शरीर को झेलना पड़ रहा है।

जिनकी ऐसी दृष्टि होगी वे कैसे जीवन को सुन्दर बना पायेंगें, कैसे जीवन को गति दे पायेंगे ? वे कैसे संगीत के नये नये रूपों पर जीवन को गतिमान करेंगे ? वे कैसे नये शिखर खोजेंगे जहां जीवन और ऊंचा हो जाय, जहां जीवन और प्रीतिकर हो जाय, जहां जीवन और प्रेम बन जाय, प्रकाश बन जाय ? नहीं, वे रुक जायेंगे, ठहर जायेंगे। जब जीवन ऐसा है, असार है, निन्दित है, छोड़ देने योग्य है तो उसे बदलने की क्या जरूरत है ? ढोलो बोझ को किसी तरह, आयेगी मौत और छुटकारा हो जायगा। किसी तरह बोझ को राम राम कहकर सह लेना है। उसे बदलने का कोई सवाल नहीं है। जबतक यहां यह दृष्टि है भारत कभी क्रांतिकारी नहीं हो सकता है।

दूसरा विन्दु, भारत की सारी चिन्तना, भारत की सारी विचारणा, भारत की सारी प्रतिभा अतीतोन्मुखी है। अतीतोन्मुखी देश कभी भी गतिमान नहीं होता है। गतिमान वे होते हैं जो भविष्योन्मुखी हैं, जो आगे देख रहे हैं—आगे जहां अभी कुहासा छाया हुआ है और कुछ भी दिखायी नहीं पड़ता। आगे जहां अभी सब शून्य है और सब निर्मित करना है। हम देख रहे हैं पीछे जहां सब निर्मित हो चुका है और हमें कुछ भी करने को शेष नहीं रहा है। अतीत में हम क्या कर सकते हैं ? अतीत वह है जो हो चुका, जो बीत चुका, जो पूरा हो चुका। अतीत के फल पक गये। अब उनमें कुछ होना नहीं है। अब हम लाख उपाय करके अतीत के साथ कुछ भी नहीं कर सकते। अतीत के साथ संबंधित भी नहीं हो सकते। अतीत जा चुका, वह मर चुका, वह हो चुका। अब उसमें करने के लिए कुछ भी शेष नहीं रहा है लेकिन हम अतीत की तरफ ही देख रहे हैं जो कि मृत और स्थिर हो गया है। ऐसी जाति की चेतना भी जो अतीत को देखती रहेगी, देखती रहेगी धीरे धीरे उतनी ही स्थिर और मृत (Dead & Fixed) हो जाती है तो आश्चर्य नहीं। क्योंकि जो हम देखते हैं और जिसे हम आत्मसात करते हैं और जो हमारे प्राणों के दर्पण में छवि बनाता है, धीरे धीरे हमारे प्राण भी उसी रूप में ढल जाते हैं और निर्मित हो जाते हैं।

भविष्य की तरफ देखना अनाजन और अज्ञात की तरफ देखना है जो

अभी हुआ नहीं, होने वाला है। जिसके साथ अभी कुछ किया जा सकता है। अभी हजार विकल्प है जिनमें से एक चुनना है, जिनमें से हम कोई भी चुन सकते हैं। हमें स्वतंत्रता है कि हम पूर्व जायं कि पश्चिम। हम क्या करें और क्या न करें। अभी भविष्य को बनाना है इसलिए जो भविष्य की तरफ देखते हैं वे सृष्टा (Creator) हो जाते हैं, वे निर्माता हो जाते हैं। और जो अतीत की तरफ देखते हैं वे केवळ द्रष्टा (Spectator) रह जाते हैं क्योंकि अतीत को सिर्फ देखा जा सकता है और कुछ भी नहीं किया जा सकता। वे केवल दर्शक रह जाते हैं, तमाशबीन, जो देख रहे हैं अतीत के लम्बे इतिहास को कि राम हुए, कृष्ण हुए, महावीर हुए, बुद्ध हुए और देखते चले जा रहे हैं और देखते चले जा रहे हैं। अतीत को देखने वाली कौम एक तमाशबीन कौम हो जाती है, भविष्य की तरफ देखने वाली कौम एक सर्जक कौम हो जाती है। तमाशबीन कैसे क्रांतिकारी हो सकते हैं? सृष्टा ही हो सकते हैं क्रांतिकारी। हमारी भविष्य की सारी चेतना अतीत में थिर हो गयी है। एक रुग्ण घाव बन गया है हम वहीं लौटकर देखते हैं। हमारी स्थिति वैसी है जैसे कोई कार में पीछे लाइट लगा ले। गाड़ी चले आगे और प्रकाश पीछे छूट गये रास्ते पर पड़े। और जिन्दगी की गाड़ी जागे ही चल सकती है, पीछे जाने का कोई मार्ग नहीं है। जिन रास्तों को हम पारकर आये वे गिर गये और समाप्त हो गये, शून्य हो गये। जिस क्षण से गुजर गये हैं वे नहीं हैं, उनमें वापस नहीं जाया जा सकता है, उनमें लौटने का कोई उपाय नहीं। जाना तो आगे ही पड़ेगा, वह मजबूरी है, उससे विपरीत जाना असम्भव है। लेकिन देख तो सकते हैं पीछे। और वह कार भी चल सकती है जिसके पीछे प्रकाश हो लेकिन उसका भविष्य क्या होगा? उस कार की जिन्दगी में सिवाय दुर्घटनाओं के और कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि चलना पड़ेगा आगे और आंख देख रहीं हैं पीछे।

भारत ऐसे ही चल रहा है। हम देख रहे हैं पीछे और चल रहे हैं आगे। तो रोज गिरते हैं और रोज गिरते जाते हैं और जितने ही गिरते हैं उतने ही घबराकर और पीछे की तरफ देखने लगते हैं और कहते हैं,– देखो राम कितने अच्छे थे, वे कभी नहीं गिरते थे। देखो रामराज्य कितना अच्छा था। रामराज्य चाहिए, सतयुग चाहिए, जो बीत गया स्वर्णयुग वह चाहिए। क्योंकि वे लोग कभी नहीं गिरते थे और हम गिर रहे हैं। इसका मतलब हुआ कि हम भ्रष्ट हो गये, हम पतित हो गये इसलिए हम गिर रहे हैं। मैं आपसे कहना

चाहता हूँ कि हम इसलिए नहीं गिर गये हैं कि हम भ्रष्ट और पतित हो गये। बल्कि हम इसलिए गिर गये हैं कि हम पीछे की तरफ देख रहे हैं। और अगर राम नहीं गिरे थे तो वे इस बात का सबूत हैं कि वे आगे की तरफ देखने वाले लोग रहे होंगें। हम पीछेकी तरफ देख रहे हैं इसलिए गिर रहे हैं। पीछे की तरफ देखने वाला कोई भी गिरेगा। चेतना चाहिए भविष्य की तरफ उन्मुख तो ही जीवन्त हो सकती है। और स्मरण रहे, जो भविष्य की तरफ देखता है वह वर्तमान को भी देखने लगता है क्योंकि भविष्य प्रतिपल वर्तमान बन रहा है। जो अतीत की तरफ देखता हैं वह वर्तमान भूल जाता है। जब वर्तमान अतीत बन जाता है तभी वह उसको देखता है। वर्तमान वह विन्दु है जहां से भविष्य अतीत बनता है। अगर आप भविष्योन्मुखी हैं तो आप भविष्य को देखेंगे और बनते हुए भविष्य को देखेंगे जो वर्तमान में आ रहा है। अगर आप अतीतोन्मुखी हैं तो आप अतीत देखेंगे और उस वर्तमान को देखेंगे जो अतीत बन गया है। लेकिन जो अतीत बन गया है वह हाथ के बाहर हो गया है। वे पक्षी उड़ चुके, अब उनपर कोई उपाय नहीं रहा। अब हम कुछ भी नहीं कर सकते। इसलिए भारत के मन में एक भाव पैदा हो गया कि कुछ भी नहीं किया जा सकता। एक भाग्यवादी रुख पैदा हो गया है कि कुछ भी नहीं किया जा सकता है। जो हो गया वह हो गया, अब कुछ उपाय नहीं है। धीरे धीरे यह बात हमारे प्राणों में इतनी गहरी बैठ गयी है कि कुछ भी नहीं हो सकता है तो अब हम बैठे देख रहे हैं क्योंकि हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। जो भविष्य को देखेगा उसे लगेगा कि सब कुछ हो सकता है, अभी कुछ भी हो नहीं गया है, अभी सब होने को है। अभी हाथ में है बात। अभी पैर उठाना है मुझे। मैं निर्णायक हूं कि किस रास्ते पर पैर उठाऊं। हजार रास्ते खुलते हैं और चुनाव मेरे हाथ में हैं। मुझे तय करना है कि मैं किस रास्ते पर जाऊं।

भविष्योन्मुखी व्यक्ति भाग्यवादी नहीं होता, भविष्योन्मुखी पुरुषार्थवादी होता है। अतीतोन्मुखी भाग्यवादी हो जाता है। भाग्यवाद में क्रांति के लिए कोई संभावना नहीं। पुरुषार्थवादी दृष्टि हो तो क्रांति की संभावना है। इसलिए दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूं कि जबतक हम अतीत से घिरे हैं और बंधे हैं तबतक हम क्रांति के लिए मुक्त नहीं हो सकेंगे। जो जा चुका उस अतीत को जाने दें अब उसे रोक के मत पकड़ें। आपके रोकने से वह रुकेगा नहीं वह तो जा चुका, वह बीत चुका, उसे बीत जाने दें। आपको जाना है आगे।

जिब्रान ने एक छोटी सी बात कही है। किसी ने उससे पूछा कि हम अपने बच्चे को प्रेम करें या न करें? तो जिब्रान ने कहा कि तुम अपने बच्चे को प्रेम करना लेकिन कृपा करके अपना ज्ञान उन्हें मत देना। क्योंकि बच्चे उस जगत को जानेंगे जो तुमने नहीं जाना और तुमने जो जाना है उसको बच्चे अब कभी भी नहीं जानेंगे, वह जा चुका। तो उन्हें उससे मत बांध लेना जो तुम्हारा ज्ञान है। अपना प्रेम देना और उन्हें मुक्त करना और उन्हें समर्थ बनाना कि वे अतीत से मुक्त हो सकें ताकि भविष्य का साक्षात्कार कर सकें।

और हम क्या कर रहे हैं हजारों वर्षों से? हम यह कर रहे हैं कि प्रेम हम चाहे बिल्कुल न दें पायें लेकिन ज्ञान पूरी तरह दे देना है। प्रेम बेमकी झंझट में पड़ने की कोई जरूरत नहीं है लेकिन ज्ञान पूरा का पूरा दे देना है, रत्ती रत्ती दे देना है। जो जाना है पिछली पीढ़ी ने उसको पूरी तरह थोप देना है बच्चे के मन पर। उसके मन को ऐसा बना देना है कि वह कभी भी भविष्य के लिए ताजा और नया न रह सकें और उसके पास की सब ताजगी, सब नयापन, नये के अनुभव की क्षमता और साहस सब खो जाय।

शायद आपने सुना हो, लाओत्से नाम का एक आदमी हुआ चीन में। लोग कहते हैं। वह बूढ़ा ही पैदा हुआ, अस्सी साल का ही पैदा हुआ। कहानी ऐसी है कि लाओत्से जब मां के पेट में था और ९ महीने पूरे हुए और पैदा होने का वक्त आया तो उसे बहुत डर लगा क्योंकि मां का पेट परिचित था, ९ महीने तक वह उसमें बड़ी शांति से रहा था। सब सुविधा थी। पता नहीं मां के पेट के बाहर जो दुनियां हो वह कैसी हो? मित्र हो कि शत्रु? भोजन मिले न मिले? लाओत्से डर गया और उसने पैदा होने से इन्कार कर दिया और वह ८० साल तक मां के पेट में ही बना रहा इस डर से कि जिन्दगी पता नहीं कैसी हो? वह बूढ़ा हो गया और उसके बाल सफेद हो गये। जब मां मरने के करीब आयी तो लाओत्से को पैदा होना पड़ा। फिर कोई उपाय न था। अब मां के भीतर रहने का कोई उपाय न था। तो लाओत्से पैदा हुआ लेकिन सफेद दाढ़ी वाला आदमी, बूढ़ा आदमी पैदा हुआ।

कहानी तो कहानी है। ऐसा हुआ तो नहीं होगा, लेकिन चेतना के तल पर ऐसी घटनाएं घटती हैं। भारत में कोई बच्चा, बच्चा पैदा नहीं होता। पैदा होते से ही बूढ़ा हो जाता है। उसे बूढ़ा कर दिया जाता है, उसके बचपन को तोड़ दिया जाता है। उसे बुढ़ापे की गंभीरता दे दी जाती है, उसे बूढ़ेपन के ख्याल दे दिये जाते हैं। उसे बूढ़े का भय दे दिया जाता है, उसे बूढ़े की सुरक्षा दे

दी जाती है। और फिर वह कभी न बच्चा होता है, न जवान होता है, वह करीब करीब बूढ़ा ही रहता है। यह जो बुढ़ापा है यह अतीत की तरफ देखने से पैदा हुआ है, भविष्य की तरफ हम देखेंगे तो फिर हम बच्चे की तरह हो जायेंगे। इस जाति की चेतना को फिर बालपन की जरूरत है, फिर बच्चे जैसे हो जाने की जरूरत है। क्रांति का यह अर्थ है कि हर पीढ़ी फिर नयी हो जाय और हर पीढ़ी फिर जीवन का नया साक्षात करने को निकल पड़े – नयी खोज में, नयी यात्रा में, अज्ञात में, खतरे को मोल लेने लगे और खतरे में जीने लगे।

नीत्से कहता था, एक ही सूत्र पाया मैंने जीवन में। जिन्हें जीवित रहना है और जीवन का पूरी तरह अर्थ जानना है उनके लिए एक ही सूत्र है, वह सूत्र है खतरे में जियो! (Iive dangerously) एक फूल वह भी है जो आपके घर में हाट हाउस में पैदा होता है। आप घर के कोने में एक फूल लगा लेते हैं। एक फूल वह भी है जो पहाड़ के दरार में पैदा होता है। आकाश के बादल उसे टक्कर मारते हैं और हवाओं के तूफान उसकी जड़ों को हिलाते हैं और वह एक एकांत नीरव पहाड़ के कोने पर खड़ा होता है। वह प्रति पल मरने को तैयार है और उस प्रति पल मरने की तैयारी में ही जीवन का रस है और आनंद है। घर के कोने में पैदा हुए फूलों को कुछ भी पता नहीं है कि पहाड़ों के किनारों पर जो फूल खिलते हैं उनका आनंद क्या है, उनकी खुशी क्या है, वे क्या जान पाते हैं ? नहीं, उसका उन्हें कोई भी पता नहीं है। घरों की सुरक्षा में बैठे हुए लोगों को कुछ भी पता नहीं है उन लोगों का, जो गौरीशंकर के शिखरों पर चढ़ते हैं, जो पैसिफिक समुद्र की की गहराइयों को नापते हैं, जो उत्ताल तरंगों में जीवन और मौत से खेलते हैं। लेकिन उन्हें उसका कुछ भी पता नहीं है, जो हवा का झोंका आता है तो कमरे को बन्द करके बिस्तर पर सो जाते हैं। उन्हें कुछ भी पता नहीं कि जीवन के और भी अर्थ हैं, कि जीवन की और भी प्रेरणाएं हैं, कि जीवन की और भी धन्यताएं हैं। उन्हें कुछ भी पता नहीं, उन्हें पता हो भी कैसे सकता है?

अकबर के दरबार में एक दिन दो जवान राजपूत आगये थे। नंगी तलवारें उनके हाथ में थी। दोनों जवान हैं, दोनों भाई हैं जुड़वां। दोनों की सूरतें देखने जैसी हैं। उनकी चमक, उनकी उत्फुल्ल जिन्दगी। वे अकबर के सामने खड़े हो गये हैं। अकबर ने कहा "तुम क्या चाहते हो?" उन्होंने कहा, "हम नौकरी की तलाश में निकले हैं। हम 'बहादुर आदमी हैं, कोई बहादुरी की नौकरी

चाहते हैं।' अकबर ने कहा, 'बहादुरी का कोई प्रमाणपत्र लाये हो?" उन दोनों की आंखों में जैसे आग चमक गयी। उन्होंने कहा, 'आप पागल मालूम होते हो। प्रमाण पत्र दूसरे के वे ले जाते हैं जो कायर हैं। हम किसका लायेंगे? बहादुरी का प्रमाण पत्र नहीं है, प्रमाण दे सकते हैं।' अकबर ने कहा, 'दे दो प्रमाण क्या है?" और एक क्षण में अकबर पछताया। दो तलवारें चमकीं और एक दूसरे की छाती में घुस गयीं। वे दोनों जवान नीचे पड़े थे और खून के फव्वारे छूट गये थे। उनके चेहरे कितने प्यारे थे! अकबर तो एकदम घबरा गया। उसने तो यह सोचा भी नहीं था कि यह हो जायगा। उसने अपने राजपूत सेनापतियों को बुलाया और कहा कि बड़ी भूल हो गयी। यह क्या हो गया, यह क्या हुआ? उन सेनापतियों ने कहा, 'आपको पता नहीं, राजपूत से बहादुरी का प्रमाण पूछते हो? राजपूत के पास बहादुरी का सिवाय इसके क्या प्रमाण है कि वह प्रतिपल मौत के साथ जूझने को तैयार है और बहादुरी का प्रमाण हो भी क्या सकता है?' उन राजपूतों ने कहा, जिन्दगी का इसके सिवाय और क्या प्रमाण है कि वह मौत से लड़ने को हर घड़ी राजी है।

भारत मर गया है। उसने मौत से लड़ने की तैयारी छोड़ दी है। इसलिए तीसरी बात आपसे कहना चाहता हूं– भारत ने मौत से लड़ने की तैयारी छोड़ दी है हजारों साल से और इसलिए जिन्दगी कुम्हला गयी और जिन्दगी मर गयी। जिन्दगी जीतती है मौत की चुनौती में; जहां मौत प्रतिपल है वहां जिन्दगी विकसित होती है। मौत की चुनौती में ही जिन्दगी का जन्म है। लेकिन हमने बहुत पहले मौत से लड़ना छोड़ दिया और हमने बड़ी तरकीब से लड़ना छोड़ा। हम बड़े चालाक लोग हैं। हमसे बद्धिमता और होशियारी (Cunningness) में दुनिया में शायद कोई नहीं जीतेगा। हमें मौत का इतना डर है कि हमने यह सिद्धांत बना लिया कि आत्मा अमर है, आत्मा मरती नहीं। इससे आप यह मत सोचना कि हमको पता चल गया है कि आत्मा अमर है। हमें कुछ पता नहीं है, हम मौत से इतने भयभीत हैं कि हम कोई सांत्वना चाहते हैं कि कोई सिद्ध कर दे कि आत्मा अमर है तो मौत का डर हमारे दिमाग से मिट जाय। यहां ये दोनों बातें एक साथ घटित हो गयीं। हमसे ज्यादा मौत से डरने वाला कोई है आज पृथ्वी पर? और हम हैं आत्मा की अमरता को मानने वाले लोग। इन दोनों में आपको कोई संगति दीखती है? जो आत्मा को अमर मानते थे उनके लिए मौत तो खत्म हो गयी थी, वे तो इस सारी दुनियां में मौत को खोजते हुए घूम सकते थे। वे आमंत्रण दे सकते थे कि मौत आ, लेकिन हम कहीं नहीं गये

घर की दीवालों को छोड़कर। हम हमेशा डरे हुए रहे हैं। हमारे प्राणों में गहरे से गहरे में मौत का भय है। उस भय को मिटाने के लिए हम यह दोहराते हैं कि आत्मा अमर है, आत्मा अमर है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्मा अमर नहीं है, लेकिन आत्मा उन्हें पता चलती है जो मौत से जूझते हैं और मौतसे गुजरते हैं उनको पता चलता है कि आत्मा अमर है। घर में बैठकर और किताब में से सूत्र निकाल कर कि आत्मा अमर है, आत्मा अमर है, इसका जाप करने से आत्मा की अमरता का पता नहीं चलता। युद्ध के मैदानों में शायद किसी किसी को आत्मा की अमरता पता चल जाती हो लेकिन घर के पूजागृहों में दरवाजे बन्द करके, धूप दीप जला कर जो पाठ करते हैं कि आत्मा अमर है उनको कभी भी पता नहीं चलता। आत्मा की अमरता का अनभव वहीं होता है जहां मौत चारों तरफ खड़ी हो। स्कूल में एक अध्यापक पढ़ाता है बच्चे को, तो सफेद दीवाल पर नहीं लिखता है सफेद चाक से, क्योंकि सफेद दीवाल पर लिखी गयी चाक का कुछ भी दिखायी नहीं पड़ेगा। वह लिखता है काले तख्ते पर। क्यों? क्योंकि काले तख्ते पर ही सफेद रेखाएं उभरती हैं और दिखायी पड़ती हैं। मौत से जूझने में ही अमरता का पहला अनुभव होता है। मौत की पृष्ठभूमि में ही अमरता के पहली बार दर्शन होते हैं। मौत की काली दीवारों में ही अमरता की शुभ्र रेखाएं चमकती हैं और पता चलता है कि मृत्यु नहीं है। लेकिन हम मृत्यु नहीं है! मृत्यु नहीं है, अमर हैं, अमर हैं! इसका जाप कर रहे हैं और पूरे वक्त डर रहे हैं और उसी डर की वजह से जाप कर रहे हैं।

मेरे एक अध्यापक थे। मैं जब पहली दफा उनकी कक्षा में गया तो उन्होंने पहले ही दिन यह कहा कि मैं बहुत हिम्मतवर आदमी हूं। मैं अंधेरी रात में बिल्कुल अकेला चला जाता हूं। मैं खड़ा हुआ। मैंने कहा, "क्षमा करिये, आप मुझे बहुत कायर आदमी मालूम पड़ते हैं। यह बात कहना कि मैं बहुत हिम्मतवर आदमी हूं, अंधेरी रात में अकेला चला जाता हूं यह एक कायर आदमी का लक्षण है। बहादुर आदमी को पता ही नहीं चलता कि क्या रात है और क्या दिन है, और कहां अकेला है और कहां नहीं।

जो भीतर कायर बैठा है डरा हुआ आदमी, उसको पता चलता है यह कि रात अंधेरी है, मैं अकेला चला जाता हूं। ये लोग—जो कह रहे हैं आत्मा अमर है, आत्मा अमर है, इनको आत्मा की अमरता का कोई पता नहीं है। ये डर को छिपाने की कोशिश कर रहे हैं, ये डर को दबाने की कोशिश कर रहे हैं। आत्मा की अमरता के सिद्धान्त में ये छिपा लेना चाहते हैं उस भय को, जो

जीवन के प्रतिपल मौत में होने से प्रगट होता है। लेकिन जो ऐसा मान लेंगे, आत्मा अमर है वे जिन्दगी का जो प्रतिपल बदलता हुआ रूप है उसके रस को खो देते हैं। जिन्दगी तो प्रतिपल मृत्यु के किनारे खड़ी है, किसी भी क्षण मौत हो सकती है। एक पत्थर का टुकड़ा है, वह पड़ा हुआ है सैकड़ों वर्षों से आंगन के किनारे में आपके, और एक फूल आज सुबह ही खिला है। फूल और पत्थर में कौन है प्रीतिकर आपको? कौन खींच लेता है प्राणों को? पत्थर नहीं, फूल। क्योंकि फूल प्रतिक्षण मृत्यु से जूझ रहा है, सांझ तक मौत आजायेगी और फूल का जीवन विलीन हो जायगा। पत्थर फिर भी पड़ा रहेगा, फिर भी पड़ा रहेगा। फूल का सौन्दर्य कहां से आरहा है? फूल का सौंदर्य आरहा है पृष्ठभूमि में खड़ी हुई मौत से उसके जूझने से। कितनी अद्‌भुत है यह दुनिया एक छोटा सा फूल भी चौबीस घंटे मौत से लड़ पाता है! छोटा सा फूल, नाजुक और मौत से जूझ लेता है चौबीस घंटे! काफी है, यह बहुत है, चौबीस घंटे भी मौत को हरा पाता है यह भी कोई कम है? यह भी क्या कोई कम चमत्कार है? उसी जूझने में उसे पता चलता है कि मिट जायेगी देह, गिर जायेंगी पंखुड़ियां, लेकिन मैं फिर भी रहूंगा क्योंकि मौत मुझे कैसे मिटा सकती है? उस जूझने से ही यह बल, उस जूझने से ही यह शक्ति और यह अनुभव आता है कि मौत मुझे नहीं मिटा सकती है। गिर जायेंगी पंखुड़ियां, गिर जायेगी देह, लेकिन मैं? मैं फिर भी हूं और फिर भी रहूंगा।

यह अनुभव आता है चुनौती से। भारत ने चुनौती छोड़ दी है मौत की और सुरक्षा का घर बनाकर बैठ गया है। यह तीसरा सूत्र मैं आपसे कहना चाहता हूं कि भारत को वापस मौत का साक्षात्कार करना है। छोड़ देने हैं सिद्धांत, और जिन्दगी को देखनी है और जिन्दगी जरूर ऐसी है जहां मौत है। उससे जूझना है, लड़ना है। बीमारियों से लड़ना है, गरीबी से लड़ना है। आप गौर करें जरा, मौत से जो कौम नहीं लड़ती वह गरीबी से कैसे लड़ेगी? बीमारी से कैसे लड़ेगी? गरीबी और बीमारी मौत की शक्लें हैं। हम बड़े होशियार लोग हैं, हम तो गरीब को कहते हैं, दरिद्रनारायण, तो नारायण को कैसे मिटायेंगे? प्लेग नारायण, मलेरिया नारायण, तो फिर उनको मिटायेंगे कैसे? तो उनकी पूजा करो। वैसे देवी देवताओंकी कमी नहीं हैं यहां; लेकिन और देवी देवता बिठा लो। दरिद्रता है महामारी, गरीबी है बीमारी, गरीबी है मौत। उसको मिटा देना है, लेकिन जिन लोगों ने मौत को ही स्वीकार कर लिया है आत्मा की अमरता की बातें करके, उन्होंने गरीबी को भी स्वीकार कर लिया है, उन्होंने

बीमारी को भी स्वीकार कर लिया है, उन्होंने सब स्वीकार कर लिया है। जो है उन्होंने स्वीकार कर लिया है। उन्होंने लड़ाई छोड़ दी क्योंकि लड़ाई में डर, है, लड़ाई में मर जाने का भय है। कौन लड़े, कौन जूझे? अपने घर में बैठो, चुपचाप रहो, शांति से जियो, जो होता है होने दो। मुल्क गुलाम बने बनने दो, बीमारी आये आने दो, गरीबी आये आने दो, यह सब भाग्य है, इसमें लड़ने से कुछ भी नहीं होगा। अपने को बचा लो उतना ही काफी है। और हम अपने को भी कहां बचा पाये? हम क्या बचा पाये? वह सारी चिन्तना भ्रांत सिद्ध हुई। लेकिन अबतक वह भ्रम हमारा टूटा नहीं है।

तो तीसरा बिन्दु है हमें मौत के जितने रूप हैं उन सबसे लड़ाई लड़नी हैं और अमरता के सिद्धांत में छिपकर बैठ नहीं जाना है। निश्चित ही जिन्दगी ऐसी है कि वह अमर है लेकिन उनको ही पता चलती है जो मौत से जूझते हैं और संघर्ष करते हैं।

और चौथा बिन्दु आपसे कहना चाहता हूं कि इस देह में हमने अब तक आनन्द के लिए, खुशी के लिए, रस के लिए कोई उद्‌भावना खड़ी नहीं की। सारा हमारा चिन्तन दुखवादी है, निराशावादी है। इसके पहले कि कोई जिन्दगी में चले, निराशा उसे पकड़ लेती है, घनघोर अंधकार उसे घेर लेता है। पहले से ही हम जान लेते हैं कि जीत असम्भव है। जीवन दुख है, जन्म दुख है, जवानी दुख है, प्रेम दुख है, सुख यहां कहीं भी नहीं है।

मैंने सुना है, एक दिन स्वर्ग के रेस्तरां में—वहां भी रेस्तरां तो होंगे, क्योंकि कोई देवता इतने नासमझ नहीं हो सकते हैं उन्होंने रेस्तरां जरुर बना लिए होंगे!—बुद्ध, कंफ्यूशियस और लाओत्से का मिलना हुआ। तीनों बैठकर गप शप कर रहे हैं और तभी एक अप्सरा हाथ में एक सुराही लिए हुए नाचती हुई आई और उसने कहा, "आप लोग जीवन का रस पियेंगे?" जीवन का रस? बुद्ध ने तो सुनते ही आखें बन्द कर लीं, और कहा, "जीवन दुख है, असार है, कोई रस नहीं है जीवन में, कोई रस नहीं। लेकिन कंफ्यूशिसस आधी आंख खोलकर देखने लगा। उसने कहा "जीवन का रस? लेकिन बिना पिये मैं कैसे कुछ कहूं? थोड़ा चखना जरूरी है।" कंफ्यूशियस हमेशा 'मध्यमार्गी था। आधी आंख खोलता था, आधी आंख बन्द रखता था। गोल्डनमीन का सिद्धान्त उसने ही विकसित किया दुनिया में कि हमेशा बीच में रहो, न इस तरफ, न उस तरफ। बुद्ध तो एकदम आंख ही बन्द कर लिए, कि नहीं, दुख है जीवन। उसमें क्या रहा? कड़वा और तिक्त। नहीं! उसे नहीं पीना है। लेकिन लाओत्से

पूरी आंख खोलकर उस अप्सरा को देखने लगा, वह बहुत सुन्दर थी। उसकी सुराही को देखने लगा उसपर बड़े बेलबूटे खुदे थे जरूर उसके भीतर कुछ रस होगा और वह खड़े होकर नाचने लगा। कंफ्यूशियस ने एक प्याली में थोड़ा सा रस लिया और चखा और कहा, "नहीं, न बेस्वाद है, न स्वादपूर्ण है, मध्य में है। वे भी ठीक हैं जो पीते हैं, वे भी ठीक हैं जो नहीं पीते है क्योंकि कोई खास बात नहीं।" लेकिन लाओत्से तो नाचते हुए पूरी सुराही हाथ में ले लिया और उसने कहा कि सिर्फ स्वाद चखने से क्या पता चलता है जबतक कि पूरा न पी जाओ, और वह पूरी सुराही पी गया। बुद्ध आंख बन्द किये बैठे रहे, कंफ्यूशियस आधी आखें खोले रहा और लाओत्से नाचने लगा और गीत गाने लगा और कहने लगा नासमझ हो तुम, जिन्दगी पूरी पीते तो ही पता चल सकता था कि क्या है। और अब मैंने पूरी पी ली है लेकिन मैं कहने में असमर्थ हूं क्योंकि जीवन के स्वाद को चखा तो जा सकता है लेकिन कहा नहीं जा सकता।

भारत ने जीवन के स्वाद को चखा ही नहीं। चौथी बात आपसे कहना चाहता हूं, हमने आनंद की उद्भावना नहीं की, हमने दुख की उद्भावना की। हमने प्रकाश को अवतीर्ण करने की चेष्टा नहीं की, हमने अंधकार को स्वीकार किया। हमने कोई विधायक दृष्टिकोण न लिया केवल निषेधात्मक वृत्ति पकड़ ली। जो चलने के पहले जानते हैं कि हार जायेंगे, लड़ने के पहले जानते हैं कि जीत असंभव है। ऐसी कौम कैसे क्रांति ला सकती है?

एक छोटी सी कहानी, और अपनी बात मैं पूरी करूंगा।

जापान के एक छोटे से राज्य पर एक बड़े राज्य ने हमला बोल दिया था। राज्य था छोटा, सेनाएं थीं कम। सेनापति घबरा गया और उसने राजा को जाकर कहा कि नहीं नहीं! युद्ध में सेनाओं को ले जाना पागलपन है। दुश्मन दसगुनी ताकत का है, हार निश्चित है। तो लोगों को क्यों कटवाना है ले जाकर: व्यर्थ उनकी हत्या का दोष अपने ऊपर मैं नहीं लूंगा। मुझे आप छुट्टी दे दें। मुझे यह नौकरी नहीं चाहिए, मैं नहीं ले जासकता हूं सेनाओं को युद्ध में। यह सीधी हार है, न हमारे पास साधन है, न सामग्री है, न सैनिक हैं।

राजा भी जानता था कि बात सत्य है। फिर राजा को ख्याल आया कि एक फकीर है उस गांव में। कई बार जब चीजें उलझ गयी थीं तो राजा उसके पास गया था। आज शायद वह कोई रास्ता बता सके। सेनापति को लेकर उस फकीर के पास राजा गया। फकीर अपना तंबूरा बजा रहा था और गीत गा रहा था। राजा ने कहा कि बन्द करो तंबूरा, राज्य पर मुसीबत है और

सेनापति कहता है कि जीत असंभव है। क्या कोई रास्ता हो सकता है?

उस फकीर ने कहा, 'पहला रास्ता, सेनापति को छुट्टी दे दो क्योंकि यह आदमी गलत है। जो आदमी पहले से कहता है कि जीत असंभव है उसकी तो जीत कभी होही नहीं सकती। यह तो निराशावादी है, इसको तो जाने दो। इसको जितना जल्दी भगाओ उतना अच्छा है क्योंकि बीमारियां संक्रामक होती हैं। कहीं सैनिकों को पता न चल जाय कि सेनापति को बीमारी हो गयी है निराशा की, नहीं तो फिर जीत सकना सच में मुश्किल हो जायगा। इसको जाने दो। रह गयी जगह सेनापति की, जगह मैं भर दूंगा। कल सुबह कूच हो जायगी। सेना हम ले जायेंगे और जीत के लौट आयेंगे।'

राजा तो बहुत डरा। यह समाधान उसने नहीं सोचा था। फकीर को तलवारभी पकड़नी आती है यह भी संदिग्ध था। वह तो तंबूरा बजाता रहा था। तंबूरा बजाने वाला तलवार कैसे पकड़ेगा? तंबूरा पकड़ने की आदतें और होती हैं, तलवार की आदतें और होती हैं और अगर तंबूरे की तरह कोई तलवार को पकड़ ले तो जीत नहीं हो सकती। लेकिन अब उस फकीर से कुछ कहना भी मुश्किल था और दूसरा कोई विकल्प भी नहीं था, मजबूरी थी।

उसकी बात मान लेना पड़ी। सेनापति तो घबरा गया उसने कहा, 'मैं होता तो थोड़ा ठीक भी था, दो चार दिन हम लड़ते भी, जीत तो होनी नहीं थी लेकिन अब लड़ाई भी नहीं होनी है। सैनिक तो और घबरा जायेंगे इस पगले को आप भेज रहे हैं सेनापति बनाकर।' लेकिन जब कोई बुद्धिमान सेनापति बनने को राजी न हो तो फिर पागल को चुनने के अतिरिक्त मार्ग क्या है?

फकीर दूसरे दिन घोड़े पर सवार हो गया और चल पड़ा। लेकिन घोड़े पर बैठा वह तंबूरा बजा रहा है और सैनिक बहुत हैरान हैं कि किस भांति की युद्ध की यह कला है। अब क्या होगा? लेकिन उन्हें पता नहीं था कि फकीर उनसे ज्यादा मनुष्य की आत्मा को जानता है। जीतते वे ही हैं जो गीत गाते हुए जाते हैं। यह उन सैनिकों को पता नहीं था। वे सोचते थे कि तलवार से ही जीत होती है। उन्हें पता नहीं था कि एक और जीत भी है जो तलवार से बड़ी है। हाथ में तलवार हो और प्राणों में गीत न हो तो जीत कभी नहीं होती और वैसी जीत हो भी जाय तो हार से बदतर होती है। जीत भी जाते हैं और जीत का कोई आनन्द भी प्राणों को स्पर्श नहीं कर पाता है।

वे युद्धक्षेत्र के निकट पहुंच गये, सीमा की नदी आगई। उस पार दुश्मन पड़ा है, इस पार वे पहुंच गये। सुबह के सूरज की रोशनी बरसती है और

एक मंदिर का कलश दिखायी पड़ा है। नदी के इसी पार मंदिर है। वह फकीर रुक गया वहां और उसने सैनिकों से कहा रुको दो क्षण, मैं जरा इस मंदिर के देवता से पूछ लूं। हमेशा की मेरी यह आदत रही है, जब भी किसी काम को करने जाता हूं इससे पूछ लेता हूं कि जीत होगी या हार? कर पाऊंगा कि नहीं? तो पूछ लें इससे। अगर यह कह देगा कि जीत होगी तो फिर दुनिया में किसी की फिक्र नहीं। तुम चाहो न भी जाना, मैं अकेला ही चला जाऊंगा। लेकिन अगर इस देवता ने कह दिया कि जीत नहीं होगी तो नमस्कार! न मैं जाने वाला हूं, न तुम। सब वापस लौट चलेंगे। क्योंकि जब देवता राजी न हो तो क्या फायदा। सैनिकों ने कहा, वह तो हम समझे, लेकिन हमें कैसे पता चलेगा कि देवता क्या कह रहा है? आप ही व्याख्याकार रहेंगे। तो हमें कैसे पता चलेगा कि देवता जो कह रहे हैं वही आप हमें बता रहे हैं? उसने कहा, नहीं अकेले में नहीं पूछूंगा, देवता से तुम्हारे सामनेही पूछूंगा। उसने जेब से एक चमकता हुआ सोने का रुपया निकाला और कहा, हे मंदिर के देवता, मैं यह रुपया फेंकता हूं यह अगर सीधा गिरा तो हम युद्ध में चले जायेंगे, समझेंगे कि तूने कहा कि जीत होगी। अगर रुपया उल्टा गिरा, तो हम वापस लौट जायेंगे। उन सैनिकों की आंखें टंगी रह गयीं। रुपया ऊपर गया, सूरज की रोशनी में चमका, वे सब देख रहे हैं, उनकी सांसे रुक गयी हैं, उनके जीवन मरण का सवाल है। फिर रुपया नीचे गिरा और उनके प्राणभी चमक गये। रुपया सीधा गिरा और उस फकीर ने कहा, 'अब हारने का सवाल नहीं, अब बात खत्म हो गयी। अब बात तय हो चुकी।' रुपया उसने खीसे में डाल लिया और वे यद्ध के मैदान पर जुझने चले गये।

दस दिन बाद वे जीत कर वापस लौटते थे दसगुनी ताकत से। जब मंदिर के पास आगये तो सैनिकों ने कहा, रुको, मंदिर के देवता को धन्यवाद तो दे दें जिसने हमें जिताया। उस फकीर ने कहा, 'छोड़ो! देवता वेवता का इसमें कोई हाथ नहीं है। अगर धन्यवाद देना है तो मुझी को दो।' लोगों ने कहा, नहीं नहीं! ऐसा कैसे कहते हैं आप। देवता ने ही तो हमको कहा था कि जाओ, जीत आओगे। उसने कहा, तुम्हें पता नहीं देवता वेचारे का कुछ इसमें संबंध ही नहीं है। उसने जेब से रुपया निकाला और सैनिकों को हाथ में दे दिया। वह सिक्का दोनों तरफ सीधा था।

भारत का पूरा इतिहास ऐसे सिक्के को पकड़े हुए है जो दोनों तरफ उल्टा है। इसलिए क्रांति इस मुल्क में नहीं हो पाती लेकिन क्रान्ति हो सकती है, होनी

चाहिए, उसके अतिरिक्त हमारा कोई भविष्य नहीं है, हमारा कोई भाग्य नहीं है। लेकिन जबतक हम इन बुनियादी सूत्रों पर भारत की आत्मा को न बदल लें तबतक हमारी कोई सामाजिक क्रांति, कोई आर्थिक क्रांति कोई राजनीतिक क्रांति कुछ मूल्य नहीं रखेगी। भारत में क्रांति की जरूरत है, लेकिन कैसी क्रांति की? आध्यात्मिक क्रांति की। अबतक जीवन के जो मूल्य रहे हैं वे गलत थे। नये मूल्य स्थापित करने हैं, उसके बाद ही राजनीतिक क्रांति भी सार्थक होगी और आर्थिक क्रांति भी सार्थक होगी, सामाजिक क्रांति भी सार्थक होगी। लेकिन अगर हमने उन मूल्यों को नहीं बदला जिनपर हमारे प्राण अब तक खड़े रहे हैं तो हमारी और सारी क्रांतियां पोच सिद्ध होंगी, उनसे कुछ परिवर्तन होने वाला नहीं।

★

जीवन और मृत्यु

संकलन : श्री अजितकुमार,
एम. ए. एम. काम.

जीवन क्या है मनुष्य इसे भी नहीं जानता है और जीवन को ही हम न जान सके तो मृत्यु को जानने की तो कोई संभावना शेष नहीं रहती। जीवन ही अपरिचित और अज्ञात हो तो मृत्यु परिचित और ज्ञात नहीं हो सकती। सच तो यह है कि चूंकि हमें जीवन का पता नहीं इसलिए ही मृत्यु घटित होती है। जो जीवन को जानते हैं उनके लिए मृत्यु असंभव शब्द है जो न कभी घटा, न घटता है, न घट सकता है। जगत में कुछ शब्द बिल्कुल ही झूठे हैं, उन शब्दों में कुछ भी सत्य नहीं है। उन्हीं शब्दों में मृत्यु भी एक शब्द है जो नितांत असत्य है। मृत्यु जैसी घटना कहीं भी नही घटती। लेकिन हम लोगों को तो रोज मरते देखते हैं, चारों तरफ रोज मृत्यु घटती हुई मालूम होती है। गांव गांव में मरघट हैं और ठीक से हम समझें तो ज्ञात होगा कि जहां जहां हम खड़े हैं वहां वहां न मालूम कितने मनुष्यों की अर्थी जल चुकी हैं। जहां हम निवास बनाये हुए हैं वे भूमि के सभी स्थल मरघट रह चुके हैं। करोड़ों करोड़ों लोग मरे हैं, रोज मर रहे हैं और अगर मैं यह कहूं कि मृत्यु जैसा झूठा शब्द नहीं है मनुष्य की भाषा में, तो आश्चर्य होगा।

एक फकीर था तिब्बत में। उस फकीर के पास कोई गया और पूछने लगा कि मैं जीवन और मृत्यु के संबंध में कुछ पूछने आया हूं। फकीर बहुत हंसने लगा और उसने कहा, "अगर जीवन के संबंध में पूछना हो तो जरूर पूछो क्योंकि जीवन का मुझे पता है। रही मृत्यु, तो मृत्यु से आज तक मेरा कोई

मिलन नहीं हुआ, उससे मेरी कोई पहचान नहीं। मृत्यु के संबंध में पूछना हो तो उन्हें पूछो जो मरे ही हुए हैं या मर चुके हैं। मैं तो जीवन हूं, मैं जीवन के संबंध में बोल सकता हूं, बता सकता हूं। मृत्यु से मेरा कोई परिचय नहीं।

यह बात वैसी है जैसी कि एक बार अंधकार ने भगवान से जाकर प्रार्थना की थी कि तुम्हारा यह सूरज मेरे पीछे बहुत बुरी तरह पड़ा हुआ है। मैं बहुत थक गया हूं। सुबह से पीछा करता है सांझ मुश्किल से छोड़ता है। मेरा कसूर क्या है? दुश्मनी कैसी है यह, यह सूरज क्यों मेरे पीछे पड़ा है? दिन भर पीछे दौड़ता रहता है और रात भर मैं दिन भर की थकान से विश्राम भी नहीं कर पाता हूं कि फिर सुबह सूरज ऊपर आकर द्वार पर खड़ा हो जाता है। फिर भागो! फिर बचो! यह अनंत काल से चल रहा है। अब मेरी धैर्य की सीमाएं आगयीं और मैं प्रार्थना करता हूं, इस सूरज को समझा दें। सुनते हैं भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम अंधेरे के पीछे क्यों पड़े हो? क्या बिगाड़ा है अंधेरे ने तुम्हारा? क्या है शिकायत, क्या है शिकायत? सूरज कहने लगा, अंधेरा! अनंत काल हो गया मुझे विश्व का परिभ्रमण करते हुए लेकिन अबतक अंधेरे से मेरी कोई मुलाकात नहीं हुई। अंधेरे को मैं जानता ही नहीं। कहां है अंधेरा? आप उसे मेरे सामने बुला दें तो मैं क्षमा भी मांग लूं और आगे के लिए पहचान लूं कि वह कौन है ताकि उसके प्रति कोई भूल न हो सके।

इस बात को हुए अनंत काल हो गये। भगवान की फाइल में वह बात वहीं की वहीं पड़ी है। वह अबतक अंधेरे को सूरज के सामने नहीं बुला सके? नहीं बुला सकेंगे। यह मामला हल नहीं होने का है। सूरज के सामने अंधकार कैसे बुलाया जा सकता है? अंधकार की कोई सत्ता ही नहीं है। अंधकार की कोई विधायक स्थिति नहीं है। अंधकार तो सिर्फ प्रकाश के अभाव का नाम है। वह प्रकाश की गैर मौजूदगी है, अनुपस्थिति है। तो सूरज के सामने ही सूरज की अनुपस्थिति को कैसे बुलाया जा सकता है? नहीं! अंधकार को सूरज के सामने नहीं लाया जा सकता है। सूरज तो बहुत बड़ा है, एक छोटे से दिये के सामने भी अंधकार को लाना असम्भव है। दिये के प्रकाश के घेरे में अंधकार का प्रवेश असंभव है। प्रकाश है जहां, वहां अंधकार कैसे आ सकता है! जीवन है जहां, वहां मृत्यु कैसे आ सकती है! या तो जीवन है ही नहीं, या फिर मृत्यु नहीं है। दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं।

हम जीवित हैं लेकिन हमें पता नहीं कि जीवन क्या है। इस अज्ञान के

कारण ही हमें ज्ञात होता है कि मृत्यु घटती है। मृत्यु एक अज्ञान है। जीवन का अज्ञान ही मृत्यु की घटना बन जाती है। काश! हम उस जीवन से परिचित हो सकें जो भीतर है। तो उसके परिचय की एक किरण भी सदा सदा के लिए इस अज्ञान को तोड़ देती है कि मैं मर सकता हूं या कभी मरा हूं, या कभी मर जाऊंगा। लेकिन उस प्रकाश को हम जानते नहीं हैं जो हम हैं और उस अंधकार से भयभीत होते हैं, जो हम नहीं हैं। उसके प्रकाश से हम परिचित नहीं हो पाते जो हमारा प्राण है, हमारा जीवन है, जो हमारी सत्ता है और उस अंधकार से हम भयभीत होते हैं जो हम नहीं हैं।

मनुष्य मृत्यु नहीं है मनुष्य अमृत है। समस्त जीवन अमृत है लेकिन हम अमृत की ओर आंख ही नहीं उठाते। हम जीवन की दिशा में कोई खोज ही नहीं करते हैं, एक कदम भी नहीं उठाते। जीवन से रह जाते हैं अपरिचित और इसलिए मृत्यु से भयभीत प्रतीत होते हैं। इसलिए प्रश्न जीवन और मृत्यु का नहीं है, प्रश्न है सिर्फ जीवन का। मुझे कहा गया है कि मैं जीवन और मृत्यु के संबंध में बोलूं। यह असंभव बात है। प्रश्न तो है सिर्फ जीवन का और मृत्यु जैसी कोई चीज ही नहीं है। जीवन ज्ञात होता है तो जीवन रह जाता है और जीवन ज्ञात नहीं होता तो सिर्फ मृत्यु रह जाती है। जीवन और मृत्यु दोनों एक साथ कभी भी समस्या की तरह खड़े नहीं होते। या तो हमें पता है कि हम जीवन हैं, तो फिर मृत्यु नहीं हैं और अगर हमें पता नहीं है कि हम जीवन हैं तो फिर मृत्यु ही है, जीवन नहीं हैं। ये दोनों बातें एक साथ मौजूद नहीं होती हैं, नहीं हो सकती हैं। लेकिन हम सारे लोग तो मृत्यु से भयभीत हैं। मृत्यु का भय बताता है कि हम जीवन से अपरिचित हैं। मृत्यु के भय का एक ही अर्थ है—जीवन से अपरिचय। जो हमारे भीतर प्रतिपल प्रवाहित हो रहा है, श्वांस श्वांस में, कण कण में चारों ओर, भीतर बाहर सब तरफ, उससे ही हम अपरिचित हैं। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि आदमी किसी गहरी नींद में है। नींद में ही हो सकती है यह संभावना कि जो हम हैं उससे भी अपरिचित हों। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि आदमी किसी गहरी मूर्छा में है। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि आदमी के प्राणों की पूरी शक्ति सचेतन नहीं है, अचेतन है, बेहोश है। आदमी सोया हो तो उसे फिर कुछ भी पता नहीं रह जाता कि मैं कौन हूं? क्या हूं? कहां से हूं? नींद के अंधकार में सब डूब जाता है और उसे कुछ पता नहीं रह जाता कि मैं हूं भी या नहीं हूं? नींद का पता भी उसे तब चलता है जब वह जागता है।

जरुर कोई बहुत गहरी आध्यात्मिक नींद, कोई आध्यात्मिक सम्मोहन की तंद्रा (Spiritual Hypnotic Sleep) मनुष्य को घेरे हुए हैं इसलिए उसे जीवन का ही पता नहीं चलता कि जीवन क्या है। नहीं, लेकिन हम इन्कार करेंगे, हम कहेंगे कैसी आप बात करते हैं, हमें पूरी तरह पता है कि जीवन क्या है। हम जीते हैं, चलते हैं, उठते हैं बैठते हैं, सोते हैं। एक शराबी भी तो चलता है, उठता है, बैठता है, सोता है श्वांस लेता है, आंख खोलता है, बात करता है। एक पागल भी तो उठता है, बैठता है, श्वांस लेता है, बात करता है, जीता है। लेकिन इससे न तो शराबी होश में कहा जा सकता है और न पागल सचेतन है यह कहा जा सकता है।

एक सम्राट की सवारी निकलती थी रास्ते पर। एक आदमी चौराहे पर खड़ा होकर पत्थर फेंकने लगा और अपशब्द बोलने लगा और गालियां बकने लगा। सम्राट की शोभायात्रा थी। उस आदमी को तत्काल सैनिकों ने पकड़ लिया और कारागृह में डाल दिया। लेकिन जब वह गालियां बकता था और अपशब्द बोलता था तो सम्राट हंस रहा था। उसके सैनिक हैरान हुए, उसके वजीर ने कहा, 'आप हंसते क्यों हैं?' सम्राट ने कहा, जहां तक मैं समझता हूं, उस आदमी को पता नहीं है कि वह क्या कर रहा है। जहां तक मैं समझता हूं वह आदमी नशे में है। खैर, कल सुबह उसे मेरे सामने ले आयें।' सुबह वह आदमी सम्राट के सामने लाया गया। सम्राट उससे पूछने लगा, कल तुम मुझे गाली देते थे, अपशब्द बोलते थे? क्या कारण था? उस आदमी ने कहा, "मैं! और अपशब्द बोलता था! नहीं महाराज, मैं नहीं रहा होऊंगा इसलिए अपशब्द बोले गये होंगे। मैं शराब में था, मैं बेहोश था, मैं था ही नहीं, मुझे कुछ पता नहीं कि मैंने क्या बोला।

हम भी नहीं हैं। नींद में हम चल रहे हैं, बोल रहे हैं, बात कर रहे हैं, प्रेम कर रहे हैं, घृणा कर रहे हैं, युद्ध कर रहे हैं। अगर कोई दूर के तारे से देखे मनुष्य की जाति को तो वह यही समझेगा कि सारी मनुष्य जाति इस भांति व्यवहार कर रही है जिस तरह नींद में, बेहोशी में कोई व्यवहार करता है। तीन हजार वर्षों में मनुष्य जाति ने १५ हजार युद्ध किये। यह जागे हुए मनुष्य का लक्षण नहीं है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सारी कथा मृत्यु की, चिन्ता की, दुःख की, पीड़ा की कथा है। आनन्द का एक क्षण भी उपलब्ध नहीं होता। आनन्दका एक कण भी नहीं मिलता। खबर भी नहीं मिलती कि आनंद क्या है। जीवन बीत जाता है और आनंद की झलक भी नहीं मिलती। यह

आदमी होश में नहीं कहा जा सकता है। दुख, चिन्ता, पीड़ा, उदासी और पागलपन जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा है लेकिन शायद हमें पता नहीं चलता क्योंकि हमारे चारों तरफ भी हमारे जैसे ही सोये हुए लोग हैं। कभी अगर एकाध जागा हुआ आदमी पैदा हो जाता है तो हम सोये हुए लोगों को इतना क्रोध आता है उस जागे हुए आदमी पर कि हम जल्दी ही उस आदमी की हत्या कर देते हैं। हम ज्यादा देर उसे बरदाश्त नहीं करते। जीसस क्राइस्ट को हम इसलिए सूली पर लटका देते हैं कि तुम्हारा कसूर यह है कि तुम जागे हुए आदमी हो। हम सोये हुए लोगों को तुम्हें देखकर बहुत अपमानित होना पड़ता है। हम सोये हुए आदमियों के लिए तुम एक अपमानजनक चिन्ह बन जाते हो। तुम जागे हुए लोग हो–तुम्हारी मौजूदगी हमारी नींद में बाधा डालती है। हम सुकरात को जहर पिलाकर मार डालते हैं, हम जागे हुए आदमियों के साथ वही व्यवहार करते हैं जो पागलों की बस्ती में उस आदमी के साथ होगा जो पागल नहीं है।

मेरे एक मित्र पागल थे। वे एक पागलखाने में बन्द कर दिये गये। पागलपन में उन्होंने फिनाइल की एक बाल्टी, जो पागलखाने में रखी थी, पी ली। उसके पी जाने से उनको इतनी उल्टियां हुई, इतने दस्त लगे कि १५ दिन में सारा शरीर रुपान्तरित हो गया। उनकी सारी गर्मी जैसे शरीर से निकल गयी और वह ठीक हो गये। लेकिन उन्हें तो ६ महीने के लिए पागलघर में भेजा गया था। ठीक हालत में भी तीन माह और उन्हें वहां रहना पड़ा। बाद में उन्होंने मुझे कहा कि तीन महीने तक ठीक होकर जब मैं पागलघर में रहा तब जो पीड़ा मैंने अनुभव की उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। जबतक मैं पागल था तबतक कोई कठिनाई नहीं थी क्योंकि और भी सब मेरे जैसे लोग थे। जब मैं ठीक हो गया तब मुझे लगा कि मैं कहां हूं। मैं सो रहा हूं और दो आदमी मेरी छाती पर सवार हो गये हैं। मैं चल रहा हूं और कोई मुझे धक्के मार रहा है। उस सबका मुझे पहले कुछ भी पता नहीं चलता था क्योंकि मैं भी पागल था। मुझे यह भी पता नहीं चलता था कि ये लोग पागल हैं जबतक मैं पागल था।

हमारे चारों तरफ सोये हुए लोगों की भीड़ है और इसलिए हमें पता नहीं चलता कि हम सोये हुए आदमी हैं। जागे हुए आदमी की हम जल्दी से हत्या कर देते हैं क्योंकि वह आदमी हमें बहुत कष्टपूर्ण मालूम होने लगता है, बहुत विघ्नकारक (Disturbing) मालूम होने लगता है। चूंकि हमारी

नींद सार्वजनिक है, सार्वभौमिक है और हम जन्म से ही सोये हुए हैं इसलिए हमें पता नहीं चलता है। इस नींद में हम जीवन को नहीं भी समझ पाते हैं। शरीर को ही जीवन समझ लेते हैं और शरीर के भीतर जरा प्रवेश नहीं हो पाता। यह समझ वैसी ही है जैसे किसी राजमहल के बाहर दीवाल के आस पास कोई घूमता हो और समझता हो कि यह राजमहल है। दीवाल पर, बाहर की दीवाल पर, चार दीवारी पर, परकोटे पर कोई घूमता हो और सोचता हो कि राजमहल है और परकोटे की दीवाल पर टिक कर सो जाता हो और सोचता हो महलों में विश्राम कर रहा हूं। शरीर के आसपास जिनके जीवन का बोध है वह उसी नासमझ आदमी की तरह है जो महल की दीवाल के बाहर खड़े होकर समझते हैं कि महल का मेहमान हो गया हूं। शरीर के भीतर हमारा कोई प्रवेश नहीं है हम शरीर के बाहर जीते हैं। बस शरीर की पर्त, बाहर की पर्त को हम जानते हैं। भीतर की पर्त का कोई पता हमें नहीं चलता। दीवाल के भीतर का ही हिस्सा पता नहीं चलता, महल तो बहुत दूर है। दीवाल के बाहर के हिस्से को ही महल समझते हैं, दीवाल के भीतर के हिस्से तक से परिचय नहीं हो पाता।

हम अपने शरीर को अपने से बाहर से जानते हैं, हमने कभी भीतर खड़े हो कर भी शरीर को नहीं देखा है भीतर से। जैसे मैं इस कमरे के भीतर बैठा हूं, आप इस कमरे के भीतर बैठे हैं। हम इस कमरे को भीतर से देख रहे हैं। एक आदमी बाहर घूम रहा है। वह इस मकान को बाहर से देख रहा है। आदमी अपने शरीर के घर को भीतर से भी देखने में समर्थ नहीं हो पाता है। बाहर से ही जानता है। जिसे हम बाहर से जानते हैं वह केवल खोल है। वह केवल बाहरी वस्त्र है। वह केवल मकान के बाहर की दीवाल है। घर का मालिक भीतर है। उस भीतर के मालिक से तो पहचान ही हमारी नहीं हो पाती। भीतर की दीवाल तक से पहचान नहीं हो पाती तो भीतर के मालिक से कैसे पहचान होगी?

बाहर से यह जीवन का अनुभव ही मृत्यु का अनुभव बनता है। यह जीवन का अनुभव जिस दिन हाथ से खिसक जाता है, जिस दिन इस घर को छोड़ कर भीतर के प्राण सिकुड़ते हैं और बाहर की दीवाल से चेतना भीतर चली जाती है उसी दिन बाहर के लोगों को लगता है कि यह आदमी मर गया है। स्वयं उस आदमी को भी लगता है कि मरा, क्योंकि जिसे वह जीवन समझता था वहां से चेतना भीतर सरकने लगती है। जिस तल पर उसे ज्ञात था कि

यह जीवन है उस तल से चेतना भीतर सरकने लगती है। नयी यात्रा की तैयारी से उसके प्राण चिल्लाने लगते हैं कि मरा! गया! सब डूबता है! क्योंकि जिसे वह समझता था कि जीवन है वह डूब रहा है, वह छूट रहा है। बाहर के लोग समझते हैं कि यह आदमी मर गया और वह आदमी भी इस मरने के क्षण में, इस बदलाहट के क्षण में समझता है कि मैं मरा, मैं गया।

यह जो शरीर है, यह हमारा वास्तविक होना (Authentic being) नहीं है। गहराई में इससे बहुत भिन्न और बिल्कुल दूसरे प्रकार का हमारा व्यक्तित्व है। इस शरीर से बिल्कुल विपरीत और उल्टा हमारा जीवन है। एक बीज को हम देखते हैं। बीज के ऊपर की खोल होती है बहुत सख्त ताकि भीतर जो छिपा हुआ जीवन का अंकुर है कोमल, उसकी वह रक्षा कर सके। भीतर का अंकुर तो होता है बहुत कोमल और उसकी रक्षा के लिए एक बहुत कठोर दीवाल, एक घेरा, एक खोल बीज के ऊपर चढ़ी होती है। वह जो खोल है वह बीज नहीं है और जो उस खोल को ही बीज समझ लेगा वह कभी भी उस जीवन के अंकुर से परिचित नहीं हो पायेगा जो भीतर छिपा है। वह खोल को ही लिये रह जायेगा और अंकुर कभी पैदा नहीं होगा। नहीं, खोल बीज नहीं है बल्कि सच तो यह है कि बीज जब पैदा होता है तो खोल को मिट जाना पड़ता है, टूट जाना पड़ता है, बिखर जाना पड़ता है मिट्टी में गल जाना पड़ता है। जब खोल गल जाती है तो बीज भीतर से प्रगट होता है।

यह शरीर एक खोल है और जीवन चेतना और आत्मा का अंकुर भीतर है। लेकिन हम इस खोल को ही बीज समझकर नष्ट हो जाते हैं और वह अंकुर पैदा भी नहीं हो पाता है, वह अंकुर फूट भी नहीं पाता है। जब वह अंकुर फूटता है तो जीवन का अनुभव होता है। जब वह अंकुर फूटता है तो मनुष्य का बीज होना समाप्त होता है और मनुष्य वृक्ष बन जाता है। जबतक मनुष्य बीज है तब तक वह सिर्फ एक संभावना (Potentiality) है और जब उसके भीतर वृक्ष पैदा होता है जीवनका तब वह वास्तविक बनता है। उस वास्तविकता को कोई आत्मा कहता है, उस वास्तविकता को कोई परमात्मा कहता है। मनुष्य है बीज परमात्मा का। मनुष्य सिर्फ बीज है। जीवन का पूर्ण अनुभव तो वृक्ष में होगा। बीज को क्या होगा? बीज क्या जान सकता है वृक्ष के आनंद को? बीज क्या जान सकता है कि आयेंगे पत्ते हरे, जिनपर सूरज की किरणें नाचेंगी बीज क्या जान सकता है कि हवाएं बहेंगी पत्तियों और शाखाओं से, और प्राण संगीत में गूंजेंगे। बीज कैसे जान सकता है कि फूल खिलेंगे और आकाश के

तारों को मात करेंगे। बीज कैसे जान सकता है कि पक्षी गीत गायेंगे और यात्री छाया में विश्राम करेंगे। बीज कैसे जान सकता है वृक्ष के अनुभव को बीज को तो कुछ भी पता नहीं। वह तो सपना भी नही देख सकता उसका जो वृक्ष होने पर संभव होगा। वह तो वृक्ष होकर ही जाना जा सकता है।

आदमी जीवन को नहीं जानता है क्योंकि उसने बीज में ही अपनी पूर्णता समझ ली है। वह तो जीवन को तभी जानेगा जब भीतर के जीवन का पूरा वृक्ष प्रगट हो। लेकिन भीतर के जीवन का वृक्ष प्रगट होना तो दूर, भीतर कुछ है शरीर से भिन्न और अलग इसका ही हमें कोई बोध नहीं हो पाता। इसकी ही हमें कोई स्मृति, इसका ही कोई स्मरण, पैदा नहीं हो पाता कि शरीर से भिन्न और अलग भी कुछ है। जीवन की समस्या जो भीतर है उसके अनुभव की समस्या है।

एक वृक्ष से मैंने पूछा तेरा जीवन कहां है? वह कहने लगा उन जडों में जो दिखाई नहीं पड़ती। जडें दिखाई नहीं पड़ती वहां जीवन है। वृक्ष जों दिखाई पड़ता है, वह वहां से जीवन लेता है जो अदृश्य है। लेकिन आदमियों ने जीवन को समझा है बाहर का सारा का सारा फूल पत्ते का जो फैलाव है वह, और भीतर की जडें बिल्कुल उपेक्षित है, आदमी के भीतर की जडें बिल्कुल ही उपेक्षित पड़ी हैं। स्मरण भी नहीं कि भीतर भी मैं कुछ हूं और जो भी है वह भीतर है। सत्य भीतर है, शक्ति भीतर है, जीवन की सारी क्षमता भीतर है। बाहर प्रगटीकरण होता है, होना भीतर है। वह जो वास्तविक है वह भीतर है। जो फैलता है और अभिव्यक्त होता है, वह बाहर है। बाहर है अभिव्यक्ति। आत्मा तो भीतर है और जो ऊपर की अभिव्यक्ति को ही जीवन समझ लेते हैं उनका सारा जीवन मृत्यु के भय से आक्रांत होता है। वे जीते हैं तो मरे मरे और डरे हुए कि कभी मर जायेंगे, किसी क्षण मर जायेंगे और यही मरने से डरे हुए लोग किसी की मौत पर रोते और परेशान होते हैं। ये अन्य किसी की मौत पर रो रहे और परेशान नहीं हो रहे हैं। हर मौत इन्हें अपनी मौत की खबर ले आती है और जो अपने हैं, बहुत निकट हैं उनकी मौत तो और बहुत जोर से खबर लाती है। अपनी मौत की खबर से जब प्राण भीतर कंप जाते हैं तब भय पकड़ लेता है, तब कंपन पकड़ लेता है और उस कंपन में उस भय में आदमी बड़ी बड़ी बातें सोचता है। सोचता है कि आत्मा तो अमर है, हम तो भगवान के अंश हैं; हम तो ब्रह्म के स्वरूप हैं। ये सब बकवास की बातें हैं और यह अपने को धोखा देने से ज्यादा नहीं है। यह मौत से डरा हुआ आदमी

अपने को मजबूत करने के लिए दोहराता है कि आत्मा अमर है। वह यह कह रहा है कि नहीं नहीं, मुझे नहीं मरना पड़ेगा, आत्मा तो अमर है। भीतर प्राण कंप रहे हैं और ऊपर से कह रहा है कि आत्मा अमर है। जो आदमी जानता है कि आत्मा अमर है उसे एक बार भी यह दोहराने की जरूरत नहीं है कि आत्मा अमर है क्योंकि वह जानता है, बात खत्म हो गयी। लेकिन यह मौत से डरने वाले लोग मौत से डरते हैं, जीवन को जान नहीं पाते हैं और फिर बीच में एक नयी तरकीब और एक नया धोखा पैदा करते हैं कि आत्मा अमर है। इसीलिए तो आत्मा को अमर मानने वाले लोगों से ज्यादा मौत से डरनेवाली कौम खोजना कठिन है। इस देश में ही यह दुर्भाग्य घटित हुआ है। इस देश में आत्मा की अमरता माननेवाले सर्वाधिक लोग हैं पृथ्वी पर और इस देश में मौत से डरने वाले कायरों की संख्या भी सर्वाधिक है। ये दोनों बातें एक साथ कैसे हो गयीं? जो जानते हैं कि आत्मा अमर है उनके लिए तो मृत्यु हो गयी समाप्त, उनके लिए भय हो गया विसर्जित, उन्हें तो अब कोई मार नहीं सकता। और दूसरी बात भी ध्यान में ले लेना है कि न उन्हें कोई मार सकता है और न अब वह इस भ्रम में हो सकते हैं कि मैं किसी को मार सकता हूं क्योंकि मरने की घटना ही खत्म हो गयी। इस राज को थोड़ा समझ लेना जरूरी है। जो लोग कहेंगे आत्मा अमर है वे मौत से डरे हुए हैं और दोहरा रहे हैं कि आत्मा अमर है और साथ ही ऐसे मौत से डरने वाले लोग अहिंसा की भी बहुत बात करेंगे। इसलिए नहीं कि वे किसी को न मारेंगे बल्कि बहुत गहरे में इसलिए कि कोई उन्हें मारने को तैयार न हो जाय। दुनिया अहिंसक होनी चाहिए, क्यों? कहेंगे तो यह कि किसी को भी मारना बुरा है लेकिन गहरे में वह यह कह रहे हैं कि कोई मुझे मार न डाले। किसी को भी मारना बुरा है लेकिन अगर उन्हें पता चल गया है कि मृत्यु होती ही नहीं तो न मरने का डर है, न मारने का डर है और न ये बातें अर्थपूर्ण रह गयीं।

कृष्ण ने कहा अर्जुन से कि तू भयभीत मत हो क्योंकि तू जिन्हें सामने खड़े देख रहा है वे बहुत बार रहे हैं पहले भी। तू भी था, मैं भी था। हम सब बहुत बार थे और हम सब बहुत बार होंगे। जगत में कुछ भी नष्ट नहीं होता इसलिए न मरने का डर है, न मारने का डर है। सवाल है जीवन को जीने का और जो मरने और मारने दोनों से डरते हैं वे जीवन की दृष्टि में एकदम नपुंसक (Impotent) हो जाते हैं। जो न मर सकते हैं, न मार सकते

हैं वे जानते ही नहीं कि जो है वह न मारा जा सकता है, न मर सकता है। कैसी होगी वह दुनिया जिस दिन सारा जगत जानेगा भीतर से कि आत्मा अमर है! उस दिन मृत्यु का सारा भय विलीन हो जायगा! उस दिन मरने का भय भी विलीन हो जायगा, उस दिन मारने की धमकी भी विलीन हो जायगी। उस दिन युद्ध विलीन होंगे, उसके पहले नहीं। जबतक आदमी को लगता है कि मैं मारा जा सकता हूं, मर सकता हूं, तबतक दुनिया में युद्ध विलीन नहीं हो सकते। चाहे गांधी समझायें अहिंसा, चाहे बुद्ध और चाहे महावीर। चाहे सारी दुनिया में अहिंसा के कितने ही पाठ पढ़ाये जायें। जबतक मनुष्य को भीतर से यह अनुभव पैदा नहीं हो जाता कि जो है वह अमृत है, तब तक दुनिया में युद्ध बन्द नहीं हो सकते। वे, जिनके हाथों में तलवारें दीखती हैं यह मत समझ लेना कि वे बहुत बहादुर लोग हैं। तलवार सबूत है कि यह आदमी भीतर से डरपोक है, कायर है, चौरस्तों पर जिनकी मूर्तियां बनाते हैं तलवारें हाथ में लेकर, वे कायरों की मूर्तियां हैं। बहादुरों के हाथ में तलवार की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि वह जानता है कि मरना और मारना दोनों बच्चों की बातें हैं। लेकिन एक अद्भुत प्रवंचना आदमी पैदा करता है। जिन बातों को वह नहीं जानता है उन बातों को भी वह दिखाने की कोशिश करता है कि हम जानते हैं। भय के कारण, भीतर है भय, भीतर वह जानता है कि मरना पड़ेगा, लोग रोज मर रहे हैं। भीतर वह देखता है कि शरीर क्षीण हो रहा है, जवानी गयी बुढ़ापा आ रहा है। देखता है कि शरीर जा रहा है लेकिन दोहरा रहा है कि आत्मा अजर अमर है। वह अपना विश्वास जुटाने की कोशिश कर रहा है, हिम्मत जुटाने की कोशिश कर रहा है कि मत घबराओ। मत घबराओ। मौत तो है, लेकिन नहीं नहीं ऋषि मुनि कहते हैं कि आत्मा अमर है। मौत से डरने वाले लोग ऐसे ऋषि मुनियों के पास इकट्ठे हो जाते हैं और भीड़ कर लेते हैं जो आत्मा की अमरता की बातें करते हैं।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आत्मा अमर नहीं है, मैं यह कह रहा हूं कि आत्मा की अमरता का सिद्धान्त मौत से डरने वाले लोगों का सिद्धांत है। आत्मा की अमरता को जानना बिल्कुल दूसरी बात है और यह भी ध्यान रहे कि आत्मा की अमरता को वे ही जान सकते हैं जो जीते जी मरने का प्रयोग कर लेते हैं, उसके अतिरिक्त कोई जानने का उपाय नहीं। इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है। मौत में होता क्या है? प्राणों की सारी ऊर्जा जो बाहर फैली हुई है, विस्तीर्ण है, वह वापस सिकुड़ती है, अपने केन्द्र पर पहुंचती है। जो ऊर्जा

प्राणोंकी सारे शरीर के कोने, कोने तक फैली हुई है वह सारी ऊर्जा वापस सिकुड़ती है, बीच में वापस लौटती है। जैसे एक दिये को हम मन्दा करते जायें। धीमा करते जायें तो फैला हुआ प्रकाश सिकुड़ जायेगा, अंधकार घिरने लगेगा। प्रकाश सिकुड़कर दिये के पास आजायगा अगर हम और धीमा करते जायें और धीमा करते जायें तो फिर प्रकाश बीज रूप में निहित हो जायगा, अंधकार घेर लेगा। प्राणों की जो ऊर्जा फैली हुई है जीवन में वह सिकुड़ती है, वापस लौटती है अपने केन्द्र पर। नयी यात्रा के लिए फिर बीज बनती है, फिर अणु बनती है। यह जो सिकुड़ाव है इसी सिकुड़ाव से, इसी संकुचन से पता चलता है कि मरा! मैं मरा! क्योंकि जिसे मैं जीवन समझता था वह जा रहा है, सब छूट रहा है। हाथ पैर शिथिल होने लगे, श्वांस खोने लगी, आंखों ने देखना बन्द कर दिया, कानों ने सुनना बन्द कर दिया। ये सारी इंद्रियां, यह सारा शरीर तो किसी ऊर्जा के साथ संयुक्त होने के कारण जीवन्त था। ऊर्जा वापस लौटने लगी है। देह तो मुर्दा है, वह फिर मुर्दा रह गयी। घर का मालिक घर छोड़ने की तैयारी करने लगा, घर उदास हो गया, निर्जन हो गया। मृत्यु के इस क्षण में पता चलता है कि जा रहा हूं, डूब रहा हूं, समाप्त हो रहा हूं और इस घबराहट के कारण कि मैं मर रहा हूं, इस चिन्ता और उदासी के कारण, इस पीड़ा (Anguish) के कारण कि में मर रहा हूं, समाप्त हो रहा हूं, इतनी ज्यादा चिन्ता पैदा होती है मन में कि, वह उस मृत्यु के अनुभव को भी जानने से वंचित रह जाता है। जानने के लिए चाहिए शांति। हो जाता है इतना अशांत कि मृत्यु को जान नहीं पाता। बहुत बार हम मर चुके हैं, अनंत बार, लेकिन हम अभी तक मृत्यु को जान नहीं पाये क्योंकि हर बार जब मरने की घड़ी आयी है तब हम इतने व्याकुल, बेचैन और परेशान हो गये हैं कि उस बेचैनी और परेशानी में कैसा जानना, कैसा ज्ञान? बार बार मौत आकर गुजर गयी है हमारे पास से लेकिन हम फिर भी अपरिचित रह गये हैं उससे। नहीं, मरने के क्षण में नही जाना जा सकता है मौत को, लेकिन हां, आयोजित मौत हो सकती है। आयोजित मौत को ही ध्यान कहते हैं, योग कहते हैं, समाधि कहते हैं। समाधि का एक ही अर्थ है कि जो घटना मृत्यु में अपने आप घटती है, समाधि में साधक चेष्टा और प्रयास से सारे जीवन की ऊर्जा को सिकोड़ कर भीतर ले जाता है। जानते हुए निश्चित ही अशान्त होने का कोई कारण नहीं है क्योंकि वह प्रयोग कर रहा है भीतर ले जाने का, चेतना को सिकोड़ने का। वह शांत मन से चेतना को भीतर सिकोड़ता है। जो मौत करती है उसे वह खुद करता है और इस शांति में वह

जान पाता है कि जीवन ऊर्जा अलग बात है, शरीर अलग बात है। वह बल्ब, जिससे बिजली प्रगट हो रही है वह अलग बात है और वह बिजली जो प्रगट हो रही है अलग बात है। बिजली सिकुड़ जाती है, बल्ब निर्जीव होकर पड़ा रह जाता है।

शरीर बल्ब से ज्यादा नहीं है। जीवन वह विद्युत है, वह ऊर्जा (Energy) वह प्राण है, जो शरीर को जीवंत किये हुए है, उतप्त किये हुए है। समाधि में साधक मरता है स्वयं, और चूंकि वह स्वयं मृत्यु में प्रवेश करता है, वह जान लेता है सत्य को कि मैं हूं अलग, शरीर है अलग। और एक बार यह पता चल जाय कि मैं हूं अलग तो मृत्यु समाप्त हो गयी और एक बार यह पता चल जाय कि मैं हूं अलग तो जीवन का अनुभव भी हो गया। मृत्यु की समाप्ति और जीवन का अनुभव एक ही सीमा पर होते हैं, एक ही साथ होते हैं। जीवन को जाना कि मृत्यु गयी, मृत्यु को जाना कि जीवन हुआ। अगर ठीक से समझें तो यह एक ही चीज के कहने के दो ढंग हैं। एक ही दिशा में इंगित करने वाले दो इशारे हैं।

धर्म को इसलिए मैं कहता हूं, मृत्यु की कला (Art of Death) लेकिन आप कहेंगे, कभी मैं कहता हूं धर्म को जीवन की कला (Art of Living) निश्चित ही दोनों बातें मैं कहता हूं क्योंकि जो मरना जान लेता है वही जीवन को जान पाता है। धर्म ही जीवन और मृत्यु की कला है। अगर जानना है कि जीवन क्या है और मृत्यु क्या है तो आपको स्वेच्छा से शरीर से ऊर्जा को खींचने की कला सीखनी होगी तो आप जान सकते हैं, अन्यथा नहीं। और यह ऊर्जा खींची जा सकती है। इस ऊर्जा को खींचना कठिन नहीं है। इस ऊर्जा को खींचना सरल है। यह ऊर्जा संकल्प से ही फैलती और संकल्प से ही वापस लौट आती है। यह ऊर्जा सिर्फ संकल्प का विस्तार है। संकल्प हम करें तीव्रता से, समग्रता से कि मैं वापस लौटता हूं भीतर। सिर्फ आधा घंटा भी कोई इस बात का संकल्प करे कि मैं वापस लौटना चाहता हूं, मैं मरना चाहता हूं, मैं डूबना चाहता हूं अपने भीतर, मैं अपनी सारी ऊर्जा को सिकोड़ लेना चाहता हूं तो थोड़े ही दिनोंमें वह इस अनुभव के करीब पहुंचने लगेगा कि ऊर्जा सिकुड़ने लगी है भीतर। शरीर छूट जायगा बाहर पड़ा हुआ। एक तीन महीने थोड़ा गहरा प्रयोग, और आप शरीर अलग पड़ा है इसे देख सकते हैं। अपना ही शरीर अलग पड़ा है इसे देख सकते हैं। सबसे पहले भीतर से दिखायी पड़ता है और फिर थोड़ी और हिम्मत जुटाई जाय तो वह जो जीवन्त ज्योति भीतर है उसे बाहर

भी किया जा सकता है और हम बाहर से देख सकते हैं कि शरीर अलग पड़ा है।

एक अद्‌भुत अनुभव मुझे हुआ, वह मैं कहूं। अबतक उसे कभी कहा नहीं। अचानक ख्याल आगया तो कहता हूं। कोई १२–१३ साल पहले बहुत रात तक मैं एक वृक्ष के ऊपर बैठकर ध्यान करता था। ऐसा बार बार अनुभव हुआ कि जमीन पर बैठकर ध्यान करने पर शरीर बहुत प्रबल होता है। शरीर बनता है पृथ्वी से और पृथ्वी पर बैठकर ध्यान करने से शरीर की शक्ति बहुत प्रबल होती है। वह जो ऊंचाईयों पर, पहाड़ों पर और हिमालय पर जाने वाले योगियों की चर्चा है वह अकारण नहीं है, बहुत वैज्ञानिक है। जितनी पृथ्वी से दूरी बढ़ती है शरीर की, उतना ही शरीरतत्व का प्रभाव भीतर कम होता चला जाता है। तो एक बड़े वृक्ष पर ऊपर बैठकर मैं ध्यान करता था रोज रात। एक दिन ध्यान में कब कितना लीन हो गया मुझे पता नहीं और कब शरीर वृक्ष से गिर गया वह मुझे पता नहीं। जब नीचे गिर पड़ा शरीर तब मैंने चौंक कर देखा कि यह क्या हो गया। मैं तो वृक्ष पर ही था और शरीर नीचे गिर गया– कैसा हुआ अनुभव कहना बहत कठिन है। में तो वृक्ष पर ही बैठा था और मुझे दिखायी पड़ रहा था कि शरीर नीचे गिर गया है। एक रजत रज्जु (Silver cord) नाभि से मुझ तक जुड़ी हुई थी। एक अत्यन्त चमकदार शुभ्र रेखा। कुछ भी समझ के बाहर था कि अब क्या होगा, कैसे वापस लौटूंगा। कितनी देर यह अवस्था रही होगी यह पता नहीं लेकिन अपूर्व अनुभव हुआ। शरीर के बाहर से पहली दफा देखा शरीर को और शरीर उसी दिन से समाप्त हो गया। मौत उसी दिन से खत्म हो गयी क्योंकि एक और देह दिखायी पड़ी जो शरीर से भिन्न है। एक और सूक्ष्म शरीर का अनुभव हुआ। कितनी देर यह रहा, कहना मुश्किल है। सुबह होते होते दो औरतें वहां से निकलीं दूध लेकर किसी गांव से और उन्होंने आकर पड़ा हुआ शरीर देखा। वह मैं देख रहा हूं ऊपर से। वे करीब आकर बैठ गयीं। उन्होंने सिर पर हाथ रखा और एक क्षण में जैसे तीव्र आकर्षण से मैं वापस अपने शरीर में आ गया और आंख खुल गयी।

तब एक दूसरा अनुभव भी हुआ। वह दूसरा अनुभव यह हुआ कि स्त्री पुरुष के शरीर में एक कीमिया और विद्युत परिवर्तन पैदा कर सकती है और पुरुष स्त्री के शरीर में। यह भी ख्याल हुआ कि उस स्त्री का छूना और मेरा वापस लौट आना यह कैसे हो गया। फिर तो बहुत अनुभव हुए इस बात के और

तब मुझे समझ में आया कि हिन्दुस्तान में जिन तांत्रिकों ने समाधि पर और मृत्यु पर सर्वाधिक प्रयोग किये थे उन्होंने क्यों स्त्रियों को भी अपने साथ बांध लिया था। गहरी समाधि के प्रयोग में अगर शरीर के बाहर तेजस शरीर चला गया, सूक्ष्म शरीर चला गया, तो बिना स्त्री की सहायता के पुरुष के तेजस शरीर को वापस नहीं लौटाया जा सकता है या स्त्री का तेजस शरीर अगर बाहर चला गया तो बिना पुरुष की सहायता के उसे वापस नहीं लौटाया जा सकता। स्त्री पुरुष के शरीर के मिलते ही एक विद्युत् वृत्त पूरा हो जाता है और वह जो बाहर निकल गयी है चेतना तीव्रता से भीतर वापस लौट आती है।

फिर तो ६ महीने में कोई ६ बार वह अनुभव हुआ निरंतर, और ६ महीने में मुझे अनुभव हुआ कि मेरी उम्र कमसे कम दस वर्ष कम हो गयी। कम हो गयी मतलब, अगर मैं सत्तर साल जीता तो साठ साल ही जी सकूंगा। ६ महीने में अजीब से अनुभव हुए। छाती के बाल मेरे सफेद हो गये छह महीने के भीतर। मेरी समझ के बाहर हुआ कि यह क्या हो रहा है। तब ख्याल में आया कि इस शरीर और उस शरीर के बीच के संबंध में व्याघात पड़ गया है, उन दोनों का जो ताल मेल था वह टूट गया है और तब मुझे यह भी समझ में आया कि शंकराचार्य का ३३ साल की उम्र में मर जाना या विवेकानंद का ३६ साल की उम्र में मर जाना कुछ और ही कारण रखता है। अगर इन दोनों के संबंध बहुत तीव्रता से टूट जायें तो जीना मुश्किल है और तब मुझे यह भी ख्याल में आया कि रामकृष्ण का बहुत बीमारियों में घिरे रहना और रमण का कैंसर से मर जानेका भी कारण शारीरिक नहीं है, उस बीच के ताल मेल का टूट जाना ही कारण है। लोग आमतौर से कहते हैं कि योगी बहुत स्वस्थ होते हैं लेकिन सचाई बिल्कुल उल्टी है। सचाई आज तक यह है कि योगी हमेशा रुग्ण रहा है और कम उम्र में मरता रहा है और उसका कुल कारण इतना है कि उन दोनों शरीर के बीच जो तालमेल (Adjustment) चाहिए उसमें विघ्न पड़ जाता है। जैसे ही एक बार वह शरीर बाहर हुआ फ़िर ठीक से पूरी तरह कभी भी पूरी अवस्था में भीतर प्रविष्ट नहीं हो पाता है। फिर उसकी कोई जरूरत भी नहीं रह जाती, उसका कोई प्रयोजन भी नहीं रह जाता, उसका कोई अर्थ भी नहीं रह जाता।

संकल्प से, सिर्फ संकल्प से ऊर्जा भीतर खींची जा सकती है। सिर्फ यह धारणा, सिर्फ यह भावना कि मैं अन्दर वापस लौट जाऊं, मैं केन्द्र पर वापस लौट जाऊं, केन्द्र पर पहुंचा सकती है। इसकी इतनी तीव्र पुकार कि यह सारे कण कण में शरीर के गूंज जाय, श्वांस श्वांस में पकड़ ले और किसी भी दिन यह घटना घट सकती है कि एक

झटके के साथ आप भीतर पहुंच जाते हैं और पहली दफा भीतरसे (From within) शरीर को देखते हैं। यह जो हजारों नाड़ियों की बात की है योग में वह शरीरशास्त्र को जानकर नहीं की है। शरीर शास्त्र से उसका कोई संबंध नहीं है। वे नाड़ियां जानी गयी हैं भीतर से और इसलिए शरीरशास्त्र (Physiology) जब उनपर विचार करता है तो पाता है कि वे नाड़ी कहां हैं ? ये जो सात चक्र बताये हैं ये कहां हैं ? वे कहीं भी नहीं हैं शरीर में, शरीर में वे कहीं भी नहीं हैं क्योंकि शरीर में हम बाहर से जांच रहे हैं, वे कहीं नहीं मिलेगें। एक और जांच है, शरीर को भीतरसे जानना (Inner Physiology)। वह बहुत सूक्ष्म (Subtle) शरीर शास्त्र है। वहां से जानने पर जो नाड़ियां जानी गयी हैं, जो केन्द्र जाने गये हैं वे सब अलग हैं। इस शरीर को खोजने से वह कहीं भी नहीं मिलेंगे। वे केन्द्र इस शरीर और उस भीतर की आत्मा के संपर्क स्थल (Contact Field) से बनते है। सबसे बड़ा संपर्क का स्थल नाभि है। आपको ख्याल होगा,अगर आप कार चला रहे हों और एकदम से एक्सीडेंट होने लगे तो सबसे पहले नाभि प्रभावित हो जायगी। एकदम नाभि अस्त व्यस्त हो जायगी। क्योंकि वहां सबसे ज्यादा गहरा उस आत्मा और इस शरीर के बीच संबंध का क्षेत्र है। वह सबसे पहले अस्त व्यस्त हो जायगा मौत को देख कर। जैसे ही मौत दिखायी पड़ेगी कि, नाड़ी अस्त व्यस्त हो जायगी सारे शरीर के केन्द्र से। शरीर की एक आंतरिक व्यवस्था है जो उस अंतस शरीर और इस शरीरके बीच संपर्क से स्थापित हुई है। जिन चक्रों की बात है वे उनके संपर्क स्थल हैं। निश्चित ही एक बार भीतर से शरीर को जानना एक बिल्कुल ही दूसरी दुनिया को जान लेना है जिसका हमें कोई भी पता नहीं है। मेडिकल साइंस, जिसके संबंध में एक शब्द भी नहीं जानती और न जान सकेगी अभी।

एक बार अनुभव हो जाय कि मैं अलग और यह शरीर अलग, मौत खत्म हो गयी। मृत्यु नहीं है और फिर तो शरीर के बाहर आकर खड़ा होकर देखा जा सकता है। यह कोई दार्शनिक तात्विक चिंतन नहीं है कि मृत्यु क्या है, जीवन क्या है। जो लोग इस पर विचार करते हैं वे दो कौड़ी का फल भी कभी नहीं निकाल पाते। यह तो है अस्तित्ववादी खोज (Existential Approach)। जाना जा सकता है कि मैं जीवन हूं, जाना जा सकता है कि मृत्यु मेरी नहीं है। इसे जिया जा सकता है, इसके भीतर प्रविष्ट हुआ जा सकता है। लेकिन जो लोग केवल सोचते हैं कि मृत्यु क्या है, जीवन क्या है, वे लाख विचार करें, जन्म जन्म विचार करें उन्हें कुछ भी पता नहीं चल सकता है। विचार केवल उसके संबंध

में ही किया जा सकता है जिसे हम जानते हों, जो ज्ञात (Known) हो। जो अज्ञात (Unknrown) है उसके बाबत कोई विचार नहीं हो सकता। आप वही सोच सकते हैं जो आप जानते हैं।, आप उसे नहीं सोच सकते हैं जिसे आप नहीं जानते। उसे सोचेंगे कैसे ? उसकी कल्पना ही कैसे हो सकती है, उसकी धारणाही कैसे हो सकती है जिसे हम जानते ही नहीं हैं। जीवन हम जानते हैं, मृत्यु हम जानते नहीं। सोचेंगे हम क्या ? इसलिए दुनिया में मृत्यु और जीवन पर दार्शनिकों ने जो कहा है उसका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है। फिलासफी की किताबों में जो भी लिखा है मृत्यु और जीवन के संबंध में उसका कौड़ी भर मूल्य नहीं है क्योंकि वह लोग सोच सोच कर लिख रहे हैं। सिर्फ योग ने जो कहा है जीवन और मृत्यु के संबंध में, उसके अतिरिक्त आज तक सिर्फ शब्दों का खेल हुआ है क्योंकि योग जो कह रहा है वह एक अस्तित्ववादी (Existential) एक जीवंत (Living) अनुभव की बात है। आत्मा अमर है, यह कोई सिद्धांत, (Theory) , कोई आदर्श (Idealogy) नहीं है। यह कुछ लोगों का अनुभव है। और अनुभव की तरफ जाना हो तो ही अनुभव हल कर सकता है इस समस्या को कि, क्या है जीवन, क्या है मौत। और जैसे ही यह अनुभव होगा, ज्ञात होगा जीवन है, मौत नहीं है, जीवन ही है, मृत्यु है ही नहीं। फिर हम कहेंगे कि लेकिन यह मृत्यु तो घट जाती है। उसका कुल मतलब इतना है कि जिस घर में हम निवास करते थे उस घर को छोड़कर दूसरे घर की यात्रा शुरू हो जाती है। जिस घर में हम रह रहे थे उस घर से हम दूसरे घर की तरफ यात्रा करते हैं। घर की सीमा है, घर की सामर्थ्य है। घर एक यंत्र है, यंत्र थक जाता है, जीर्ण हो जाता है और हमें पार हो जाना होता है। अगर विज्ञान ने व्यवस्था कर ली तो आदमी के शरीर को सौ दोसौ तीन सौ वर्ष जिलाया जा सकेगा लेकिन उससे यह सिद्ध नहीं होगा कि आत्मा नहीं है, उससे सिर्फ इतना सिद्ध होगा कि आत्मा को कल तक घर बदलने पड़ते थे ; अब विज्ञान ने पुराने ही घर को फिर से ठीक कर देने की व्यवस्था कर दी है। उससे यह सिद्ध नहीं होगा, इस भूल में कोई वैज्ञानिक न रहे कि हम आदमी की उम्र अगर पांच सौ वर्ष कर लेंगे, हजार वर्ष कर लेंगे तो हमने सिद्ध कर दिया कि आदमी के भीतर कोई आत्मा नहीं है। इससे कुछ भी सिद्ध नहीं होता। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि शरीरका जो यंत्र था उसे आत्मा को इसीलिए बदलना पड़ता था कि वह जराजीर्ण हो गया था। अगर उसको रिप्लेस किया जा सकता है, हृदय बदला जा सकता है, आंख बदली जा सकती है, हाथ पैर बदले जा सकते हैं तो

आत्मा को उसे बदलने की कोई जरूरत नहीं रही। पुराने घर से ही काम चल जायगा। उससे कोई आत्मा नहीं है, यह दूर से भी सिद्ध नहीं होता। यह भी हो सकता है कल के विज्ञान टेस्टटयूब में जन्म दे सके, बच्चे को और तब शायद वैज्ञानिक इस भ्रम में पड़ेंगे कि हमने जीवन को जन्म दे लिया, वह भी गलत है, वह भी मैं कह देना चाहता हूं उससे भी कुछ सिद्ध नहीं होता। मां और बाप मिलकर क्या करते हैं? एक पुरुष और एक स्त्री मिलकर स्त्री के पेट में आत्मा को जन्म नहीं देते, वे सिर्फ एक अवसर पैदा करते हैं जिसमें आत्मा प्रविष्ट हो सकती है। मां का और पिता का अणु मिलकर एक अवसर (Opportunity) पैदा करते हैं जिसमें कि आत्मा प्रवेश पा सकती है। कल यह हो सकता है कि टेस्टट्यूब में यह सिचुएशन पैदा की जा सके। इससे कोई आत्मा पैदा नहीं हो रही है। मां का पेट भी तो एक यांत्रिक व्यवस्था है। वह प्राकृतिक है। कल विज्ञान यह कर सकता है कि प्रयोगशाला में जिन जिन रासायनिक तत्त्वों से पुरुष का वीर्याणु बनता है और स्त्री का अणु बनता है उन उन रासायनिक तत्वों की पूरी खोज और पूरी जानकारी से टेस्टटयूब में वही रासायनिक व्यवस्था कर लें। तब जो आत्माएं कल मां के पेट में प्रविष्ट होती थीं वे टेस्ट-ट्यूब में प्रविष्ट हो जायेंगी। लेकिन आत्मा पैदा नहीं हो रही है, आत्मा अब भी आ रही है।

जन्म की घटना दोहरी घटना है – शरीर की तैयारी और आत्मा का आगमन, आत्मा का उतरना। आत्मा के संबंध में, आने वाले दिन बहुत खतरनाक और अंधेरे होने वाले हैं क्योंकि विज्ञान की प्रत्येक घोषणा आदमी को यह विश्वास दिला देगी कि आत्मा नहीं है। इससे आत्मा असिद्ध नहीं होगी, इससे सिर्फ आदमी का भीतर जाने का जो संकल्प था वह क्षीण होगा। अगर यह आदमी को समझ में आने लगे कि ठिक है, उम्र बढ़ गयी, बच्चे टेस्ट्टयूब में पैदा होने लगे, अब कहां है आत्मा? तो इससे आत्मा असिद्ध नहीं होगी, इससे सिर्फ आदमी का जो प्रयास चलता था अंतस की खोज का वह बन्द हो जायगा। और यह बहुत दुर्भाग्य की घटना आने वाले पचास वर्षों में घटने वाली है। इधर पचास वर्षों में, पिछले वर्षों में उसकी भूमिका तैयार हो गयी है। दुनिया में आज तक पृथ्वी पर दीन लोग रहे हैं, दरिद्र लोग रहे हैं, दुखी लोग रहे हैं, बीमार लोग रहे हैं। उनकी उम्र कम थी, उनके पास अच्छा भोजन न था, अच्छे कपड़े न थे। लेकिन आज तक आत्मा की दृष्टि से दरिद्र लोगों की संख्या जितनी आज है उतनी कभी भी नहीं थी और उसका कुल एक ही कारण है यह विश्वास कि भीतर कुछ है ही नहीं तो जाने का सवाल क्या है। एक बार अगर मनुष्य जाति को यह

विश्वास आगया कि भीतर कुछ है ही नहीं तो वहां जाने का सवाल खत्म हो जाता है। आने वाला भविष्य अत्यन्त अंधकारपूर्ण और खतरनाक हो सकता है। इसलिए हर कोने से इस संबंध में प्रयोग चलते रहने चाहिए ताकि ऐसे कुछ लोग खड़े होकर घोषणा करते रहें, सिर्फ शब्दों की और सिद्धांतों की नहीं, गीता की, कुरान और बाइबिल की पुनरुक्ति नहीं, बल्कि घोषणा कर सकें जीवन की कि, मैं जानता हूं कि मैं शरीर नहीं हूं। और यह घोषणा केवल शब्दों की न हो, यह उसके सारे जीवन से प्रगट होती रहे तो शायद हम मनुष्य को बचाने में सफल हो सकते हैं अन्यथा विज्ञान की सारी की सारी विकसित अवस्था मनुष्य को भी एक यंत्र में परिणत कर देगी। और जिस दिन मनुष्य जाति को यह ख्याल आ जायेगा कि भीतर कुछ भी नहीं है उस दिन से शायद भीतर के सारे द्वार बन्द हो जायेंगे और उसके बाद क्या होगा, कहना कठिन है।

आज तक भी अधिक लोगों के भीतर के द्वार बन्द रहे हैं लेकिन कभी कभी कोई एक साहसी व्यक्ति भीतर की दीवालें तोड़ के घुस जाता है। कभी कोई एक महावीर, कभी कोई एक बुद्ध, कभी कोई एक क्राइस्ट, कभी कोई एक लाओत्से तोड़ देता है दीवाल और भीतर घुस जाता है। उसकी संभावना भी रोज रोज कम होती जा रही है। हो सकता है सौ दो सो वर्षों के बाद जैसा मैंने आपसे कहा, मैं कहता हूं जीवन है, मृत्यु नही है; मनुष्य कहे कि मृत्यु है जीवन नहीं है। इसकी तैयारी तो पूरी हो गयी है। इसको कहने वाले लोग तो खड़े हो गये हैं। आखिर मार्क्स क्या कह रहा है। मार्क्स यह कह रहा है कि मैटर है, माइंड नहीं है। मार्क्स यह कह रहा है कि पदार्थ है परमात्मा नहीं है और जो तुम्हें परमात्मा मालूम होता है वह भी बाई प्रोडेक्ट है पदार्थ का। वह भी पदार्थ की ही उत्पत्ति है, वह भी पदार्थ से ही पैदा हुआ है। मार्क्स यह कह रहा है कि जीवन नहीं है, मृत्यु है, क्योंकि अगर आत्मा नहीं है और पदार्थ ही है तो फिर जीवन नहीं है। मार्क्स की इस बात का प्रभाव बढ़ता चला गया यह शायद आपको पता नहीं होगा। दुनिया में ऐसे लोग रहे हैं हमेशा जिन्होंने आत्मा को इन्कार किया है लेकिन आत्मा को इन्कार करने वालों का धर्म आज तक दुनिया में पैदा नहीं हुआ था। मार्क्स ने पहली दफा आत्मा को इन्कार करने वाले लोगों का धर्म पैदा कर दिया है। नास्तिकों का अबतक कोई संगठन नहीं था। चारवाक् थे, बृहस्पति थे, एपीकुरस था। दुनिया में अद्भुत लोग हुए जिन्होंने यह कहा कि नहीं है आत्मा, लेकिन उनका कोई चर्च, उनका कोई संगठन नहीं था। मार्क्स दुनिया में पहला नास्तिक है जिसके पास आर्गनाइज्ड चर्च है और आधी दुनिया उसके चर्च के भीतर खड़ी हो गयी है और आने वाले पचास

वर्षों में बाकी आधी दुनिया भी खड़ी हो जायगी। आत्मा तो है लेकिन उसको जानने और पहचानने के सारे द्वार बन्द होते जा रहे हैं। जीवन तो है लेकिन उस जीवन से संबंधित होने की सारी संभावनाएं क्षीण होती जा रही हैं। इसके पहले कि सारे द्वार बन्द हो जायं, जिनमें थोड़ी भी सामर्थ्य और साहस है उन्हें अपने ऊपर प्रयोग करने चाहिए और चेष्टा करनी चाहिए भीतर जाने की ताकि वे अनुभव कर सकें। और अगर दुनिया के सौ दो सौ लोग भीतर की ज्योति को अनुभव करते हों तो कोई खतरा नहीं है। करोड़ों लोगों के भीतर का अंधकार थोड़े से लोगों की ज्योति से दूर हो सकता है और टूट सकता है। एक छोटा सा दिया और न मालूम कितने अंधकार को तोड़ देता है। अगर एक गांव में एक आदमी भी हो जो जानता हो कि आत्मा अमर है तो गांव का पूरा वातावरण, उस गांव की पूरी की पूरी हवा, उस गांव की पूरी की पूरी जिन्दगी बदल जायगी।

एक छोटा सा फूल खिलता है और दूर दूर के रास्तों पर उसकी सुगंध फैल जाती है। एक आदमी भी अगर इस बात को जानता है कि आत्मा अमर है तो उस एक आदमी का एक गांव में होना पूरे गांव की आत्मा की शुद्धि का कारण बन सकता है। लेकिन हमारे मुल्क में तो कितने साधु हैं और कितने चिल्लाने और शोरगुल मचानेवाले लोग हैं कि आत्मा अमर है और उनकी इतनी लंबी कतार, इतनी भीड़ और मुल्क का यह नैतिक चरित्र और मुल्क का यह पतन! यह साबित करता है कि यह सब धोखेबाज धंधा है। धंधा कहीं कोई आत्मा वात्मा को जानने वाला नहीं है। यह इतनी भीड़, इतनी कतार, यह इतना बड़ा सर्कस साधुओं का सारे मुल्क में — कोई मुंह पर पट्टी बांधे हुए एक तरह का सर्कस कर रहा है, कोई डंडा लिए हुए दूसरे तरह का सर्कस कर रहा है, कोई तीसरे तरह का सर्कस कर रहा है। यदि यह इतनी बड़ी भीड़ आत्मा को जानने वाले लोगों की है, और मुल्क का जीवन इतना नीचे गिरता चला जाय यह असंभव है। और मैं आपको कहना चाहता हूं कि जो लोग कहते हैं कि आम आदमी ने दुनिया का चरित्र बिगाड़ा है वह गलत कहते हैं। आम आदमी हमेशा ऐसा रहा है। दुनिया का चरित्र ऊंचा था कुछ थोड़े से लोगों के आत्म–अनुभव की वजह से। आम आदमी हमेशा ऐसा था। आम आदमी में फर्क नहीं पड़ गया है। आम आदमी के बीच कुछ लोग थे जो समाज और उसकी चेतना को सदा ऊपर उठाते रहे, सदा ऊपर खींचते रहे। उनकी मौजूदगी उत्प्रेरक का काम करती रही है और आदमी के जीवन को ऊपर खींचती रही। और अगर आज दुनिया में आदमी का चरित्र इतना नीचा है तो जिम्मेवार हैं साधु, जिम्मेवार हैं महात्मा,

जिम्मेवार हैं धर्म की बातें करने वाले झूठे लोग। आम आदमी कोई जिम्मेवार नहीं है। उसका कभी कोई उत्तरदायित्व नहीं है। पहले भी नहीं था, आज भी नहीं है।

अगर दुनिया को बदलना है तो इस बकवास को छोड़ दो कि हम एक एक आदमी का चरित्र सुधारेंगे, कि हम एक एक आदमी को नैतिक शिक्षा का पाठ देंगे। अगर दुनिया को बदलना चाहते हैं तो कुछ थोड़े से लोगों को अत्यंत तीव्र आत्मिक प्रयोगों से गुजरना पड़ेगा। जो लोग बहुत भीतरी प्रयोग से गुजरने को राजी हैं, ज्यादा नहीं, सिर्फ एक मुल्क में सौ लोग आत्मा को जानने की स्थिति में पहुंच जायें और पूरे मुल्क का जीवन अपने आप ऊपर उठ जायेगा।

मैं तो राजी हो गया था इस बात पर बोलने के लिए सिर्फ इसलिए कि हो सकता है कि कोई हिम्मत का आदमी आजाय तो उसको मैं आमंत्रण दूंगा कि मेरी तैयारी है भीतर ले जाने की। तुम्हारी तैयारी हो तो आजाओ। वहां बताया जा सकता है कि जीवन क्या है और मृत्यु क्या है।

★

भारत का दुर्भाग्य

संकलन : श्री भीकमचंद जैन, एम. ए.

भारत के दुर्भाग्य की कथा बहुत लम्बी है और जैसा कि लोग साधारणतः समझते हैं कि हमें ज्ञात है कि भारत का दुर्भाग्य क्या है वह बिल्कुल ही गलत है। हमें बिल्कुल भी ज्ञात नहीं है कि भारत का दुर्भाग्य क्या है। दुर्भाग्य के जो फल और परिणाम हुए हैं वह हमें ज्ञात हैं लेकिन किन रुग्ण जड़ों के कारण, भारत का सारा जीवन विषाक्त, असफल और उदास हो गया है ? वह कौन से बुनियादी कारण हैं जिसके कारण भारत का जीवनरस सूख गया है, भारत का बड़ा वृक्ष धीरे धीरे कुम्हला गया है, उस पर फल फूल आना बन्द हो गये हैं ? भारत की प्रतिमा पूरी की पूरी जड़ और अवरुद्ध हो गयी है ? वह कौन से कारण हैं जिनसे यह हुआ है ? निश्चित ही उन कारणों को हम समझ लें तो उन्हें बदला भी जा सकता है। सिर्फ वे ही कारण कभी नहीं बदले जा सकते जिनका हमें कोई पता ही न हो। बीमारी मिटानी उतनी कठिन नहीं है जितना कठिन निदान है। एक बार ठीक से पता चल जाय कि बीमारी क्या है तो बीमारी के मिटाने के उपाय निश्चित ही खोजे जा सकते हैं। लेकिन अगर यही पता न चले कि बीमारी क्या है और कहां है, तो इलाज से बीमारी ठीक तो नहीं होती उल्टे अंधे इलाज से बीमारी और बढ़ती चली जाती है। बीमारी से भी अनेकबार औषधि ज्यादा खतरनाक हो जाती है, अगर बीमारी का कोई पता न हो। बीमारी कम लोगों को मारती है, वैद्य ज्यादा लोगों को मार डालते हैं, अगर इस बात का ठीक पता न हो कि बीमारी क्या है। और मुझे दिखायी पड़ता है कि हमें कुछ भी पता नहीं कि बीमारी क्या है, हमारे दुर्भाग्य का मूल आधार क्या है। यह तो दिखायी पड़ता है कि दुर्भाग्य घटित

हो गया है, यह तो दिखायी पड़ता है कि अंधकार जीवन पर छा गया है। एक उदासी, एक निराशा, एक हताशा, एक बोझिलपन और ऐसा कि जैसा हमने सब खो दिया है और आगे कुछ भी पाने की उम्मीद भी खो दी है। वह दिखायी पड़ता है, लेकिन यह हो क्यों गया है? बहुत से लोग हैं जो इसका निदान करते हैं। कोई कहेगा कि पश्चिम के प्रभाव से भारत नीचे गिर गया है, चरित्र में, आशा में, आत्मा में। गलत कहते हैं वे लोग। गलत इसलिए कहते हैं कि यह बात ध्यान रहे कि जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है वैसे ही प्रभाव भी ऊपर की तरफ नहीं बहता है, हमेशा नीचे की तरफ बहता है। अगर एक बुरे और अच्छे आदमी का मिलन होगा तो जिसकी ऊंचाई ज्यादा होगी प्रभाव उसकी तरफ से दूसरे आदमीकी तरफ बहेगा। अगर अच्छे आदमी की ऊंचाई ज्यादा होगी तो बुरा आदमी परिवर्तित हो जायगा और अगर अच्छे आदमी की सिर्फ बातचीत होगी और जीवन में कोई गहराई न होगी तो बुरा आदमी प्रभावी हो जायगा और प्रभाव बुरे आदमी से अच्छे आदमी की तरफ बहने शुरू हो जायंगे।

पश्चिम से भारत प्रभावित हुआ है, इसका कारण यह नहीं है कि पश्चिम ने भारत को प्रभावित कर दिया है, इसका कारण यह है कि पश्चिम की, जिसको हम अनीति कहते हैं, वह अनीति भी हमारी नीति से ज्यादा बलवान और शक्तिशाली सिद्ध हुई है। पश्चिमकी अनैतिकता की भी एक ऊंचाई है, हमारी नैतिकता की भी उतनी ऊंचाई नहीं है। पश्चिम के भौतिकवाद की भी एक सामर्थ्य है, हमारे आध्यात्मवाद में उतनी भी सामर्थ्य नहीं है, वह उससे भी ज्यादा निर्वीर्य, नपुंसक सिद्ध हुआ है। इसलिए प्रभाव उनकी तरफ से हमारी तरफ बहता है। इसमें दोष उनका नहीं है। पहाड़ पर पानी गिरता है, लेकिन गिरा हुआ पानी भी पहाड़ से उतर जाता है नीचे, क्योंकि पहाड़ की ऊंचाई इतनी है। और यह हो सकता है कि एक झील में पानी भी न गिरे, एक गड्ढे में पानी भी न गिरे, लेकिन पहाड़ पर गिरा हुआ पानी बहकर थोड़ी देर में गड्ढे में भर जायगा। और गड्ढा यह कह सकता है कि पानी मुझमें भरकर मुझे भ्रष्ट कर रहा है। लेकिन गड्ढे को जानना चाहिए कि वह गड्ढा है इसलिए पानी भर रहा है। वहां खाली जगह है, वहां निचाई है इसलिए प्रभाव चारों तरफ से दौड़ते हैं और भर जाते हैं। भारत की आत्मा रिक्त और खाली है इसलिए सारी दुनिया उसे कभी भी प्रभावित कर सकती है। जिनकी आत्माएं भरी हैं, समृद्ध हैं, वे प्रभावित नहीं होते हैं, बल्कि प्रभावित करते हैं। यह दोष देने से कुछ भी न होगा कि पश्चिम की शिक्षा और पश्चिम की संस्कृति हमें विकृत कर रही है। यह ऐसा ही

है जैसा गड्ढा कहे कि पानी भर कर हमें नष्ट कर रहा है। गड्ढे को जानना चाहिए कि मैं गड्ढा हूं इसलिए पानी मेरी तरफ दौड़ता है। अगर मैं पहाड़ का शिखर होता तो पानी मेरी तरफ नहीं दौड़ सकता था। लेकिन हम गाली देकर तृप्त हो जाते हैं और सोचते हैं हमने कोई कारण खोज लिया। हम सोचते हैं हमने पश्चिम को दोष देकर कोई कारण खोज लिया। हम बिल्कुल नहीं देख पाये कि हम गड्ढे की तरह हैं!

कुछ लोग हैं जो कहेंगे कि हजारों साल से भारत गुलाम था इसलिए दीनहीन, दरिद्र और दुखी और पीड़ित हो गया है। वे भी गलत कहते हैं। उनकी आंखें भी बहुत गहरी नहीं हैं किसी की आत्मा को देखने के लिए। गुलामी से कोई मुल्क पतित नहीं होता है, पतित होने से मुल्क गुलाम हो जाता है। गुलामी से कोई कैसे पतित हो सकता है? और बिना पतित हुए कोई गुलाम कैसे हो सकता है? एक कौम को मरने की हमेशा स्वतंत्रता है लेकिन जो लोग मरने के मुकाबले में गुलामी को चुन लेते हैं वे ही केवल गुलाम हो सकते हैं। हम मृत्यु से इतने भयभीत लोग हैं कि हम कैसा भी दीन हीन, दलित, पैरों में पड़ा हुआ जीवन स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन मृत्यु को वरण करने की हिम्मत हमने बहुत पहले खो दी है। हम इसलिए नहीं नीचे गिर गये कि हम हजारों साल गुलाम रहे, हम नीचे गिरे इसलिए हमें हजार साल गुलाम रहना पड़ा है। और आज भी हमारी कोई ऊंचाई उठ गयी है? कोई स्वतंत्र होने से ऊंचा नहीं उठ जाता है। मात्र स्वतंत्र होने से कोई ऊपर नहीं उठ जाता। बल्कि हालत उल्टी दिखायी पडती हैं। गुलाम हम थे तो जैसे एक गुलामी से बंधे और हमारे चरित्र को चारों तरफ दीवालें रोके हुई थीं। स्वतंत्र होकर हमारे चरित्र में और पतन आया है, ऊंचाई नहीं उठी है। जैसे स्वतंत्रता ने हमारे चरित्र में जो छिपे हुए रोग थे उन सबको मुक्त कर दिया है और स्वतंत्र कर दिया है। हम स्वतंत्र नहीं हुए, हमारी सारी बीमारियां स्वतंत्र होगयी हैं। हम स्वतंत्र नहीं हुए, हमारी सारी कमजोरियां स्वतंत्र हो गयी हैं। हम स्वतंत्र नहीं हुए, हमारे भीतर जितने भी रोग के कीटाणु थे वह सब स्वतंत्र हो गये हैं और देश गुलामी की हालत से भी बदतर हालतों में पिछले बीस वर्षों में नीचे उतर गया है। कोई कहेगा कि हम दरिद्र हैं, दीन हैं इसलिए सारे दोष-उदासी, थकावट, बेचैनी, घबराहट, अनैतिकता, यह सब हैं। लेकिन नहीं इस बात को भी मैं मानने को राजी नहीं हूं। सचाई फिर भी उल्टी है। सचाई यह नहीं है कि हम गरीब हैं इसलिए हम चरित्रहीन हैं। हम चरित्रहीन हैं इसलिए हम गरीब हैं। चरित्र एक समृद्धि लाता है, चरित्र एक श्रम लाता है।

चरित्र ही संकल्प पैदा करता है, चरित्र कुछ करने की हिम्मत और बल देता है। वह बल हमारे भीतर नहीं है इसलिए हम दरिद्र हैं, इसलिए हम दीन हैं।

यह जो ऊपर से दिखायी पड़ने वाले कारण हैं, ये कोई कारण नहीं हैं। और भारत के सारे नेता, सारे धर्मगुरु और वे सारे हकीम, जो नीमहकीम ही हैं, इन्हीं ऊपर से दिखाई देने वाले कारणों पर अटके हुए हैं और इसलिए वे कोई भी फर्क नहीं ला सकते।

मैं एक छोटी सी घटना से अपनी बात शुरू करना चाहता हूं कि क्या है दुर्भाग्य का मूल आधार। स्वामी रामतीर्थ जापान गये हुए थे। वे जापान के सम्राट के महल का बगीचा भी देखने गये। उस बगीचे में उन्होंने एक बड़ी अद्‌भुत बात देखी। वे बहुत हैरान हुए। चिनार के वृक्ष थे जिन्हें आकाश में सौ डेढ़ सौ फुट तक उठ जाना चाहिए किंतु वे केवल एक एक बीते के, एक एक बालिश्त के थे। उनकी उम्र डेढ़ डेढ़, दो दो सौ वर्ष थी। रामतीर्थ बहुत हैरान हुए कि दो सौ वर्षों का चिनार का वृक्ष और एक बालिश्त, एक बीता की ऊंचाई! यह कैसे संभव हुआ? लेकिन उनकी समझ में कुछ भी नहीं आ सका। जो माली उन्हें देख रहा था वह हंसने लगा। उसने कहा मालूम होता है आपको वृक्षों के संबंध में कुछ भी पता नहीं। रामतीर्थ ने कहा कि हैरान हूं कि यह वृक्ष डेढ़ सौ वर्ष का है। इसे तो आकाश छू लेना था, यह केवल एक बालिश्त का कैसे है? किस तरकीब से? उस माली ने कहा "आप वृक्ष को देखते हैं, माली जड़ों को देखता है।" उसने गमले को उठाकर बताया। उसने कहा, "हम इस वृक्ष की जड़ों को नीचे नहीं बढ़ने देते हैं। उन्हें नीचे से काटते चले जाते हैं। जड़ें नीचे छोटी रह जाती हैं तो वृक्ष ऊपर नहीं उठ सकता है। आकाश में उठने के लिए पाताल तक जड़ों का जाना बहुत जरूरी है। जड़े जितनी गहरी जाती हैं, उतना ही वृक्ष ऊपर उठता है। वृक्ष के प्राण—ऊपर उठते हुए वृक्ष में नहीं होते। वृक्ष के मूलप्राण होते हैं उन जड़ों में जो दिखायी भी नहीं पड़तीं। हम जड़ों को काटते रहते हैं। नीचे जड़ें छोटी रखते हैं तो वृक्ष ऊपर नहीं बढ़ पाता। वृक्ष ऊपर कभी नहीं बढ़ सकेगा। वृक्ष के प्राण जड़ों में होते हैं।"

किसी जाति के प्राण कहां होते हैं, कभी पूछा? कोई जाति अगर बौनी रह जाय, कोई जाति अगर ठिगनी रह जाय आत्मा के जगत में, चरित्र के जगत में, तो उसके प्राण कहां हैं, उसकी जड़े कहां हैं? यह पूछना जरूरी है क्योंकि जड़ें जरूर कहीं नीचे से काट दी गयी हैं या काटी जा रही हैं और इसलिए व्यक्तित्व ऊपर नहीं प्रगट हो पा रहा है। हम ऊपर से पूरे वृक्ष को भी काट दें तो कुछ

नुकसान नहीं हो पायेगा अगर जड़ें साबित हों तो नया वृक्ष फिर पैदा हो जायगा। लेकिन जड़ें हम नीचे से काट दें, वृक्ष पूरा का पूरा साबित हो तो भी मर गया, तो भी दिन दो दिन की बात है; वृक्ष कुम्हला जायगा और शाखाएं ढल जायेंगी और मृत्यु पास आने लगेगी। वृक्ष के प्राण होते हैं जड़ों में। जाति के प्राण कहां होते हैं, राष्ट्रों के प्राण कहां होते हैं ? कभी सोचा है कि कहां होते हैं प्राण ? क्योंकि जहां होते है प्राण वहीं से बीमारियां उठती हैं और फैलतीं हैं। जड़ें दिखायी नहीं पड़तीं, वृक्ष दिखायी पड़ता है। किसी जाति, किसी देश, किसी समाज की जड़ें भी दिखायी नहीं पड़तीं। मनुष्य के जीवन में ऐसी कौन सी बात है जो दिखायी नहीं पड़ती ? शायद आपने कभी उस तरफ खोजबीन ही न की हो।

अगर हम मनुष्य के व्यक्तित्व को खोजें तो दो बातें दिखायी पड़ेंगी। आचरण दिखायी पड़ता है, व्यक्तित्व दिखायी पड़ता है। विचार दिखायी नहीं पड़ते, विचार अदृश्य हैं। आचरण की जड़ें विचार में होती हैं और अगर विचार की जड़ों को व्यवस्था से काट दिया गया हो तो आचरण अपने आप पंगु हो जायगा, आगे न बढ़ सकेगा। भारत के विचार की जड़ें काटी गयी हैं। और जिन्हें हम अच्छे और भले लोग कहते हैं और जिनके चरण पकड़कर हम सोचते हैं कि जगत का उद्धार और जीवन सफल हो जाएगा उन्हीं लोगों ने विचार की जड़ें काट दी हैं। विचार के तल पर भारत ने आत्मघात कर लिया है और इसलिए आचरण के तलपर वृक्ष सूखता चला गया और जीवन के तलपर हम उदास, थके हुए और हारे हुए होते चले गये।

मैं ऐसी तीन जड़ों की बातें आज करना चाहता हूं जो विचार के तल पर भारत के दुर्भाग्य का मूल आधार हैं और यह कह देना चाहता हूं कि जबतक उन तीन जड़ों को हम नहीं बदल लेते हैं तबतक भारत कभी भी दुर्भाग्य से मुक्त नहीं हो सकता। आज नहीं, हजारों साल तक भी मुक्त नहीं हो सकता। लाख उपाय कर लें हम ऊपर ऊपर वृक्ष को सम्हालने के, हमारे सब उपाय थोथी सजावट साबित होंगे। वृक्ष में प्राण नहीं आ सकेंगे, जीवन सजीव नहीं हो सकेगा, प्रतिभा जाग नहीं सकेगी। शायद मेरी बात अजीब लगेगी क्योंकि वह जो नहीं दिखायी पड़ता है, उस संबंधमें बात करना थोड़ी मुश्किल होती है।

पहली जड़—भारत के विचार के केन्द्रों में आज तक भारत की समय की जो धारणा (Concept of Time) है वह गलत है। इस – समय की गलत धारणा के कारण हमारे जीवन का इतना अहित हुआ है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। हमारी समय की धारणा क्या है ? हमारा टाइम कंसेप्ट क्या है ? भारत के समय

की धारणा ऐसी है जैसे सूरज निकलता है, सांझ डूब जाता है, फिर दूसरे दिन सूरज निकलता है, फिर सांझ डूब जाता है, एक वृत्त, एक चक्र में सूरज घूमता है। भारत को पहले यह अनुभव हुआ कि सूरज एक चक्र में घूमता है, जहां से निकलता है फिर वापस वहीं लौट जाता है। एक आवर्तित चक्र, एक वृत्ताकार परिभ्रमण है। बर्षा आती है, फिर दूसरी ऋतु आती है, फिर तीसरी ऋतु आती है, फिर बर्षा आ जाती है। ऋतुएं भी एक परिभ्रमण करती हैं, एक चक्र में घूमती हैं। आदमी पैदा होता है, बच्चा, जवान, बूढ़ा फिर मौत, फिर बचपन, फिर जवानी, फिर मौत। जीवन भी एक चक्र में घूमता है। जीवन के इस चक्रीय अनुभव के आधार पर भारत ने यह सोचा कि समय भी एक चक्र में घूमता है। जो ससय बीत गया वह फिर आजायेगा। समय एक वृत्त में घूमता है बार बार। जैसे हम एक चक्के को घुमायें तो जो स्पोक अभी ऊपर है वह थोड़ी देर बाद नीचे चला जायगा, फिर ऊपर आयेगा, फिर नीचे जायेगा, फिर ऊपर आयेगा। समय एक चक्र में घूमता है ऐसी भारत ने धारणा बनायी। इस धारणा ने भारत के प्राण ले लिए। यह बुनियादी रूप से गलत है। समय चक्र की तरह नहीं घूमता है, समय एक सीधी रेखा में जाता है और वापस कभी नहीं लौटता। जो हो गया वह फिर कभी नहीं होगा। समय एक सीधी यात्रा है जिसमें लौटने का कोई भी उपाय नहीं है। समय परिभ्रमण नहीं कर रहा है। आप कहेंगे कि समय की धारणा से भारत के दुर्भाग्य का क्या सम्बन्ध हो सकता है? गहरा संबंध है। सोचेंगे तो दिखायी पड़ेगा। जो कौम ऐसा सोचती है कि समय एक चक्कर में परिभ्रमण कर रहा है उस कौम का पुरुषार्थ नष्ट हो जायगा। उस कौम को कुछ करने जैसा है—यह धारणा भी नष्ट हो जायगी। चीजें अपने आप घूमकर अपनी जगह आजाती हैं और घूमती रहती हैं। हमें कुछ भी नहीं करना है। नयी चीजें होती ही नहीं, पुरानी चीजें बार बार घूमती रहती हैं। कलियुग है, फिर आयेगा सतयुग, फिर आयेगा कलियुग और ऐसे ही घूमता रहेगा। चौबीस तीर्थंकर होंगे, फिर पहला तीर्थंकर होगा, फिर २४ तीर्थंकर होंगे, फिर पहला तीर्थंकर होगा। कल्प घूमता रहेगा चक्के की तरह। जो हो चुका है वह हजारों बार हो चुका है और आगे भी हजारों बार होगा। आपके करने और न करने का सवाल नहीं है, समय के चक्कर पर आप घूम रहे हैं।

जब एक मुल्क के प्राणों में यह धारणा बैठ गयी कि हमारे करने से कुछ होने वाला नहीं है, सूरज निकलता है, डूब जाता है। वर्षा आती है, निकल जाती है। गरमी आती है, फिर वर्षा आती है, फिर गरमी आती है। यह चक्र में घूमता

रहता है समय। हमारे करने जैसा कुछ भी नहीं है। हम दर्शक की भांति हैं घूमते हुए समय को देखने वाले लोग। समय की इस परिभ्रमण की धारणा ने भारत को दर्शक बना दिया, भोक्ता नहीं, कर्ता नहीं। और दर्शकों की क्या स्थिति हो सकती है जीवन के मार्ग पर ? जिन्दगी कोई तमाशबीनी नहीं है कि कोई तमाशे की तरह हम देख रहे हैं कहीं खड़े होकर। जिन्दगी जीनी पड़ती है लेकिन जीने की धारणा तभी पैदा होती है जब हमें यह विश्वास हो कि कुछ नया पैदा किया जा सकता है जो कभी नहीं था। हम नये को निर्माण कर सकते हैं, हमारे हाथ में है भविष्य। भविष्य पहले से निर्धारित नहीं है, निर्धारित होना है, और हम निर्धारित करेंगे। हमें निर्धारित करना है भविष्य को। आने वाला कल हमारा निर्माण होगा, किसी अनिवार्य इतिहास चक्र (Wheel of History) का घूम जाना नहीं। लेकिन भारत दस हजार वर्षों से इस बात को माने बैठा है कि इतिहास का चक्र घूम रहा है। सारी दुनिया में इतिहास की किताबें हैं, भारत के पास इतिहास की कोई किताब नहीं है। क्यों ? क्योंकि जो चीज बार बार घूमकर होनी है उसका इतिहास भी क्या लिखना। भारत के पास कोई इतिहास नहीं है। पश्चिम ने इतिहास लिखा क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि जो भी एक घटना एक बार घट गयी है अब कभी पुनः नहीं दोहरेगी। उसे स्मरण रख लेना जरूरी है, उसका इतिहास होना जरूरी है। अब वह कभी भी वापस होने को नहीं। एक एक घटना ऐतिहासिक है क्यों कि वह अकेली और अनूठी है। इसलिए पश्चिम ने इतिहास लिखा। उनके इतिहास में एक एक मिनट और एक एक घड़ी का उन्होंने हिसाब रखा। हमारा कोई इतिहास नहीं है। हम यह भी नहीं बता सकते कि राम कब हुए, हम यह भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि राम हुए भी कि नहीं हुए। हमें हिसाब रखने की कोई जरूरत नहीं पड़ी क्योंकि राम हर कल्प में होते हैं, करोड़ों बार हो चुके हैं, अरबों बार हो चुके हैं, अरबों बार फिर भी होंगे। यह राम की कथा बहुत बार होती रहेगी। इसको क्या याद रखने की जरूरत है।

इतिहास हम नहीं निर्माण किये, यह आकस्मिक नहीं है। ऐसा नहीं था कि हमें लिखना नहीं आता था। दुनिया में सबसे पहले लिखने की ईजाद हमने कर ली थी। ऐसा भी नहीं है कि हममें सुनिश्चित धारणा नहीं थी चीजों को लिखने की। जो हमने लिखना चाहा है वह हमने बहुत सुनिश्चित लिखा है लेकिन हमें इतिहास लिखने का ख्याल ही पैदा नहीं हुआ क्योंकि जो चीज बार बार दोहरती है उसे स्मरण रखने की जरूरत क्या है ? वह तो दोहरती रहेगी। इसलिए हमने इतिहास नहीं लिखा और जब हमें यह ख्याल हो गया कि हर चीज

पुनरुक्त है तो जीवन से सारा रस चला गया। जीवन में रस होता है तब, जब हर चीज नयी हो। जब हर चीज पुनरुक्त हो तो जीवन नीरस होगया, जीवन एक उदासी, एक ऊब हो गया, कि ठीक है, यह होता रहा है, यह होता रहेगा। यह चलता रहा है, यह चलता रहेगा। इसमें कुछ कम नहीं किया जा सकता है। नये की कोई संभावना नहीं है। हम यह कहते रहे कि आकाश के नीचे सब पुराना है, नया कुछ भी नहीं हो सकता। जबकि सचाई उल्टी है। आकाश के नीचे सब नया है, पुराना कुछ भी नहीं। कल जो सूरज उगा था वह सूरज भी आज वही नहीं है जो कल था। कल जिस गंगा के किनारे आप गये थे वह गंगा आज वही नहीं है। बहुत पानी बह चुका है, नयी गंगा वहां बह रही है, सिर्फ आंखों का भ्रम है कि लगता है कि वही गंगा है। आप जो कल थे वह आज नहीं हैं। जिन्दगी रोज नयी है, और अगर जिन्दगी रोज नयी है तो जिन्दगी में रस आ सकता है। जिन्दगी अगर वही है पुरानी की पुरानी तो जिन्दगी में रस नहीं हो सकता। भारत विरस हो गया है, निराश हो गया है, समय की इस धारणा के कारण। और जिन्दगी नयी हो ही नहीं सकती तो फिर हमारे पास करने को कुछ भी नहीं बचता है। एक अनिवार्य चक्र है जो घूम रहा है। हमें करने को क्या है? जब हमें करने को कुछ भी नहीं है तो धीरे धीरे करने की जो सामर्थ्य थी, जो हम कुछ करते तो जागती और विकसित होती, वह सो गयी और समाप्त हो गयी। अगर एक आदमी को यह पता चल जाय कि मुझे चलने की कोई जरूरत नहीं है तो आप समझते हैं कि दो चार पांच साल वह नहीं चले तो उसकी चलने की क्षमता बचेगी? उसकी चलने की क्षमता खो जायगी। उसके पैर चलने का काम ही भूल जायेंगे। एक आदमी दो चार पांच साल देखना बन्द कर दे तो आंखें शून्य हो जायेंगी, देखने की क्षमता विलीन हो जायगी। हम जिस अंग का उपयोग करते हैं वही अंग विकसित होता है। हमने पुरुषार्थ का उपयोग नहीं किया तो पुरुषार्थ विकसित नहीं हुआ। और इसीलिए हम दरिद्र हैं और दरिद्र रहेंगे और किसी भी दिन गुलाम हो सकते हैं क्योंकि जिस मुल्क के भाव में पुरुषार्थ की भावना नहीं है उस मुल्क का सौभाग्य उदय नहीं हो सकता है। समय की इस धारणा ने हमें भाग्यवादी (Fatalist) बनाया, इसलिए अगर गुलामी आयी तो हमने कहा, यह भाग्य है। अगर उम्र हमारी कम हो गयी और हमारे बच्चे कम उम्र में मरे तो हमने कहा यह भाग्य है। हमने प्रत्येक चीज की एक व्याख्या खोज ली कि यह भाग्य है, इसमें कुछ किया नहीं जा सकता है। भाग्य का मतलब क्या है? भाग्य का मतलब है कि यह एक ऐसी

घटना है जिसमें हम कुछ भी नहीं कर सकते। भाग्य का और कोई मतलब नहीं है। भाग्य का मतलब है कि करने से हम छुटकारा चाहते हैं। ऐसा हुआ, ऐसा होना था, ऐसा होगा। फिर हम कहीं खड़े रह जाते हैं।

इस समय की चक्रीय दृष्टि ने हमें भाग्यवादी बना दिया है और भाग्यवादी कोई भी देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता है। समृद्धि के लिए चाहिए श्रम, समृद्धि के लिए चाहिए संघर्ष। समृद्धि के लिए चाहिए नया आकाश, नया मार्ग, नया शिखर छूने की कामना, कल्पना, सपने। वह सब हमसे छिन गये। जो हो रहा है उसे सह लेना है। कुछ करने को हमारे सामने नहीं रह गया। इसलिए जब देश गुलाम हुआ तो हमने कहा कि ऐसाही भाग्य है। बिहार में अकाल पड़ा तो गांधी जैसे अच्छे आदमी ने यह कहा था कि बिहार के लोगों के पापों का फल है। गांधी के भीतर से भारत की वही पुरानी मूढ़ता हजारों साल की बोल रही है। गांधी को ख्याल भी नहीं कि हम यह क्या कह रहे हैं। बिहार के लोग अकाल में भूखों मरते हैं तो यह उनके पापों का फल है! मतलब इस संबंध में हमें कुछ करने को न रहा। वह अपने पाप का फल भोग रहा है और पापों का फल भोगना पड़ेगा। हम इसमें क्या कर सकते हैं? अभी गुजरात में बाढ़ आयी और लोग बह गये और मर गये। उनके पापों का फल है! हम क्या कर सकते हैं? अपने अपने पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है। एक निराश-चिंतन जीवन के बाबत हमारा खड़ा हो गया। हम जीवन को बदल नहीं सकते जैसा हम चाहते हैं। जैसा हम चाहते हैं पृथ्वी हो, वैसी पृथ्वी हम बना नहीं सकते, यह हमारी सामर्थ्य के बाहर है। एक बार जब देश ने यह धारणा भीतर ग्रहण कर ली तो देश की आत्मा सो गयी, प्रतिभा खो गयी, सामर्थ्य नष्ट हो गया। यह विचार पीछे काम कर रहा है हमारे जीवन को नष्ट करने में। साथ ही इसके कुछ और फल हुए। जो कौम यह मानती है कि आगे भी वापस वही पुनरुक्त होगा जो पहले हो चुका है तो उसकी आंखें पीछे लग जाती हैं, आगे नहीं। उसकी दृष्टि अतीतोन्मुखी होजाती है, वह पीछे की तरफ देखना शुरू कर देती है क्योंकि जो पीछे हुआ है वही आगे भी होने वाला है तो भविष्य को जानने का एक ही रास्ता है कि हम अतीत को जान लें क्योंकि वही पुनरुक्त होगा, वही दोहरेगा।

पूरे भारत की आंख अतीत पर लग गयी जो अब है ही नहीं, जो जा चुका है। यह वैसा ही है जैसे हम कार की हेड लाइट पीछे की तरफ लगा दें, कार आगे की तरफ चले और लाइट पीछे की तरफ हो तो दुर्घटना सुनिश्चित है। दुर्घटना होने ही वाली है क्योंकि कार चलेगी आगे की तरफ और

प्रकाश उसका पड़ेगा पीछे की तरफ । जिस रास्ते से कोई संबंध नहीं उसपर प्रकाश पड़ेगा और जिस रास्ते से आगे सम्बन्ध है वह अंधकारपूर्ण होगा। भारत की आंखे, भारत के राष्ट्र की आंखें सामने की तरफ नहीं हैं, पीछे की तरफ हैं। हम विचार करते हैं राम का, हम विचार करते हैं महावीर का बुद्ध का। हम कभी विचार नहीं करते आने वाले भविष्य का, आने वाले बच्चों का। न राम इतने महत्वपूर्ण हैं, न बुद्ध, न महावीर जितना आने वाले कल पैदा होने वाला बच्चा है। घर घर में पैदा होने वाला साधारण सा बच्चा भी पुराने आदमियों से, सारे अतीत से ज्यादा महत्वपूर्ण है क्योंकि वह होने वाला है और अतीत हो चुका है, जा चुका है, समाप्त हो चुका है। लेकिन बच्चे हमारे रोज नष्ट होते चले गये क्योंकि उनपर हमारा कोई ध्यान नहीं है। ध्यान उन बूढ़ों पर है, ध्यान उन मुर्दों पर है जो व्यतीत हो चुके, बच्चों पर हमारा कोई ध्यान नहीं है। समय की ऐसी धारणा, परिभ्रमण करने वाली धारणा मनुष्य को अतीतवादी बना देती है। भविष्य जैसी कोई चीज उसके सामने नहीं रह जाती और पूरी कौम पीछे की तरफ देखने लगती है। जो पीछे की तरफ देखने लगता है उसकी आत्मा बूढ़ी हो जाती है यह समझ लेना जरूरी है। यह इसलिए समझ लेना जरूरी है, आपने शायद ख्याल न किया हो ; बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं। बच्चों का कोई अतीत नहीं होता देखेंगे भी क्या? पीछे की तरफ देखने की कोई स्मृति नहीं होती। बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते हैं। बूढ़े हमेशा अतीत की तरफ देखते हैं। भविष्य उनका कुछ होता नहीं। भविष्य में मौत होती है एक दीवाल की तरह। आगे देखने में कुछ होता नहीं। भविष्य यानी शून्य। भराव होता है अतीत का। तो बूढ़ा हमेशा बैठकर स्मृति करता है कि ऐसा था बचपन, ऐसी थी जवानी ऐसे थे दिन, इस भाव घी बिकता था, इस भाव गेहूं बिकता था। वही सारी बातें सोचता है क्योंकि भविष्य कोई नहीं है उसके पास। उसके पास है केवल अतीत। वृद्ध मन का लक्षण है अतीत का चिन्तन। बूढ़ा अतीत का चिंतन करने लगता है। बाल मन का लक्षण है। भविष्य, और युवा मनका लक्षण है वर्तमान। युवक जीता है वर्तमान में अभी और यहां। न उसे भविष्य की फिक्र है न उसे अतीत की। न वह बच्चा है, न वह बूढ़ा है। अभी जो आनंद मिल जाय वह उसे जी लेना चाहता है। इस क्षण में जो मिल जाय, वह उसे भोग लेना चाहता है। जब बच्चा था तो भविष्य था, जब बूढ़ा हो जायगा तो अतीत होगा, अभी युवा है तब वर्तमान है।

कौमें भी तीन तरह की होती हैं। बचपन में जो कौमें होती हैं, जैसे रूस।

रूस के पास कोई अतीत नहीं है। उन्होंने अतीत को छोड़ दिया है, इन्कार कर दिया है, वह गया। १९१७ के पहले उनका कोई अतीत नहीं है। वह उसकी कोई बात भी नहीं उठाते। भविष्य है, और भविष्य का चिन्तन और विचार करना है और उसे निर्मित करना है। अमरीका को जवान कौम कहा जासकता है। उसके पास में न कोई अतीत है, न कोई भविष्य है। अभी इसी क्षण जी लेना है, जो है उसे भोग लेना है। भारत बूढ़ी कौम कहा जा सकता है। उसके पास न कोई भविष्य है, न कोई वर्तमान है केवल अतीत है। राम की कथा है। महावीर के स्मरण हैं। वह जो बीत गया सुखद, स्वर्ण उन सबकी हजारों स्मृतियाँ हैं। उन्हीं स्मृतियों में जीना है। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि अतीत का इतना चिन्तन रुग्णवार्धक्य का लक्षण है और यह अतीत का चिन्तन समयकी इस धारणा से पैदा हुआ है। विकासमान जाति के लिए भविष्य का चिन्तन जरूरी है। विकासमान राष्ट्र के लिए भविष्य महत्वपूर्ण है और भविष्य के बाबत विचार करना होगा कि क्या हो सकता है क्योंकि अतीत के संबंध में हम कुछ भी नहीं कर सकते। जो हो गया, हो गया। अब उसे तब्दील नहीं किया जा सकता, अब उसमें कुछ भी हेर फेर करने का उपाय नहीं है, अब उसमें एक रत्ती भर कोई फर्क करने की संभावना नहीं है। तो अगर हम अतीत को ही सदा देखते रहे तो हमारे चित्त में यह धारणा पैदा हो जायगी कि कुछ भी नहीं किया जा सकता क्योंकि अतीत में कुछ भी नहीं किया जा सकता। और जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं हमारी चेतना उसी के साथ तल्लीन हो जाती है और एक हो जाती है। हम जो ध्यान करते हैं, जिसका ध्यान करते हैं उसी जैसे हो जाते हैं। अतीत को देखने वाले लोग धीरे धीरे इस निष्कर्ष पर पहुंच जायें तो आश्चर्य नहीं कि कुछ भी नहीं किया जा सकता। क्योंकि अतीत में कुछ भी नहीं किया जा सकता है। भविष्य की तरफ देखने वाले लोग इस नतीजे पर पहुंच जायें कि सब कुछ किया जा सकता है तो आश्चर्य नहीं क्योंकि भविष्य का मतलब यही है कि जो अभी नहीं हुआ है और हो सकता है, हो सकने का मतलब है कि अभी हजार संभावनाएं हैं, उनमें से कोई भी संभावना चुनी जा सकती है। भविष्य की तरफ देखने वाली जाति जवान हो जायगी, युवा हो जायगी, ताजी हो जायगी, जीने की सामर्थ्य खोज लेगी। अतीत की तरफ देखनेवाली कौम जड़ हो जायगी, बूढ़ी हो जायगी, उसके स्नायु सूख जायेंगे।

समय का यह विचार बदलना होगा ताकि हम देश की प्रतिभा को भविष्योन्मुखी बना सकें, ताकि हम देश की प्रतिभा को यह भाव और दृढ़ आधार

दे सकें, कि तुम कुछ कर सकते हो। तुम्हारे हाथ में कुछ है।

दूसरा केन्द्र, दूसरी एक जड़ अद्‌भुत रुप से हमें परेशान किये रही है और हमारे प्राणों में बहुत गहरा उसका विस्तार है और वह जड़ है इस बात की कि हमने कर्मफल के सिद्धांत की एक ऐसी धारणा स्वीकार की है कि कर्म तो करेंगे आप अभी और फल मिलेगा अगले जन्म में। इतना बिलंबित फल, अजीब बात है। अभी मैं आग में हाथ डालूंगा तो अगले जन्म में जलूंगा! अभी चोरी करूंगा और अगले जन्म में फल मिलेगा! कार्य और कारण हमेशा संबंधित होते हैं, उनके बीच में रत्ती भर का फासला नहीं होता। बीज और वृक्ष में फासला होता है? अगर बीज और वृक्ष में रती भर का फासला भी पड़ जाय तो उस बीज से वृक्ष पैदा भी न हो सकेगा। उनका संबंध ही टूट जाएगा। बीज और वृक्ष एक ही सातत्य (Continuity) के हिस्से हैं, मैं जो करता हूं उसका फल अभी मुझसे जुड़ा हुआ है, संयुक्त है, तत्क्षण संबंधित है। यह झूठी बात है कि अभी मैं करूंगा काम और फल मिलेगा अगले जन्म में। लेकिन यह धारणा हमने विकसित क्यों की और इस धारणा की वजह से हमने कितने दुःख भोगे उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह धारणा इसलिए विकसित करनी पड़ी कि समाज में यह दिखायी पड़ता था एक आदमी अच्छा है और दुःख भोग रहा है और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, और सुख भोग रहा है। तब हमारे साधु संतों और महात्माओं को बड़ी मुश्किल हुई इस बात को समझाने में कि इसका मतलब क्या है। इसके दो ही मतलब हो सकते हैं। एक मतलब तो यह हो सकता था कि बुरे काम का बुरे फल से कोई संबंध नहीं है अच्छे काम का अच्छे फल से कोई संबंध नहीं है। एक आदमी चोरी करता है और बेईमानी करता है और इज्जत, प्रतिष्ठा और समृद्धि में जीता है और एक आदमी ईमानदारी से रहने की कोशिश करता है, सच बोलता है, और दुख पाता है, कष्ट पाता है। इसका एक मतलब तो यह हो सकता था कि दोनों बातें संबंधित नहीं है। आप क्या करते हैं, आपको क्या मिलेगा, यह संबंधित नहीं है। यह केवल संयोगिक है। अगर यह बात कोई मुल्क मान ले तो उस मुल्क में नीति और धर्म विलीन हो जायेंगे। संत महात्माओं की इतनी हिम्मत न थी कि इस बात को मान लें। इस बात को मानने का मतलब तो यह था कि फिर नैतिकता के लिए कोई आधार न रहा।

दूसरा विकल्प यह था कि आदमी जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। लेकिन आंखें तो यह बताती हैं कि बेईमान सुख पा रहे हैं, ईमानदार दुःख पा

रहे हैं। इससे क्या हल निकाला जाय? तो हल यह निकाला गया कि वह बेईमान जो अभी सुख पा रहा है, पहले जन्म की ईमानदारी का फल पा रहा है और वह जो ईमानदार दुख पा रहा है वह पिछले जन्म की बेईमानी का दुख पा रहा है। फल तो हमेशा वही मिलता है जैसा कर्म है लेकिन पिछले जन्म के कर्म सब इकट्ठे होकर फल लाते हैं। इस जन्म से हमने संबंध तोड़कर पिछले जन्म से जोड़ा ताकि व्याख्या में तकलीफ न हो लेकिन यह व्याख्या हमें और भी बड़े गड्ढे में ले गयी। मेरी अपनी समझ यह है कि इस धारणा ने कि पिछले जन्मों के बिलंबित फल हमें मिलते हैं। दो कारण हमारे सामने खड़े कर दिये, दो स्थितियां बना दीं। एक तो यह कि बुरा काम करने के प्रति जो तीव्र विचार होना चाहिए था वह शिथिल हो गया क्योंकि अगले जन्म में फल मिलने वाला है। पहले तो यही पक्का नहीं कि अगला जन्म होगा कि न होगा इसे जानने का कोई प्रमाणीभूत उपाय नहीं। कोई मुर्दे लौटकर कहते नहीं कि अगला जन्म हुआ है। अगले जन्म की बात ने तथ्यको इतना कमजोर कर दिया कि आज जो मेरी जरूरत है उसको आज पूरा करूं या अगले जन्म में होने वाले फलों का विचार करूं। आज की जरूरत इतनी तीव्र और जरूरी है कि अगले जन्म के विचार के लिए उसे स्थगित नहीं किया जा सकता है। तो फिर जो ठीक लगे अभी करूं अगले जन्म का अगले जन्म में देखा जायगा। ऐसा एक स्थगन हमारे दिमाग में पैदा हो गया कि ठीक है अभी जो करना है करो, अगले जन्म में देखा जायगा। इतने दूर की बात से मनुष्य प्रभावित नहीं हो सकता। इतने दूर के फल मनुष्य के जीवन और चरित्र को गतिमान नहीं कर सकते। इतनी आकाश की और हवा की बातें मनुष्य के प्राणों के जीवन्त तथ्य नहीं बन सकतीं। इसलिए भारत का सारा चरित्र हीन हो गया क्योंकि यह दिखायी पड़ा कि अभी तो बुरा करने से अच्छा फल मालूम होता है। अगले जन्म का अगले जन्म देखा जायगा। फिर कौन कहता है कि अगला जन्म होगाही। फिर कौन कहता है कि इस जन्म में जब बुरा आदमी अच्छे फल भोग सकता है तो अगले जन्म में भी वह कोई न कोई तरकीब न निकाल लेगा। जब इस जन्म में तरकीब निकालनेवाले तरकीब निकाल लेते हैं तो अगले जन्म में भी निकाल ही लेंगे। फिर कौन जानता है कि आदमी समाप्त नहीं हो जाता शरीर के साथ। इन सारी बातों ने स्थिति को बिल्कुल डांवाडोल कर दी और भारत के व्यक्तित्व को इकट्ठे शिथिल कर दिया। उसके पास कोई जीवन्त नियम न रहा जिनके आधार पर वह चरित्र को, आचरण को और जीवन को ऊंचा उठाने की चेष्टा करे।

दूसरा परिणाम यह हुआ, दूसरी धारणा यह विकसित हुई कि अगर मैं पाप भी करूं तो कुछ पुण्य करके उन पापों को रद्द किया जा सकता है। स्वाभाविक था। अगर एक एक कर्म का फल मिलता होता तो एक कर्म के फल को दूसरे कर्म का फल रद्द नहीं कर सकता था। लेकिन हमको फल मिलना था इकट्ठा। एक जन्म भर के कर्मों का फल अगले जन्म में मिलना था तो हम पाप भी कर सकते हैं। और पुण्य करके उनको रद्द भी कर सकते हैं। अंतिम हिसाब में जोड़ बाकी में अगर पुण्य बच जाय तो मामला खत्म हो जाता है। तो परिणाम यह हुआ कि पाप भी करते रहो एक तरफ, दूसरी तरफ पुण्य भी करते रहो। एक तरफ लाखों रुपये चूसो, शोषण करो, दूसरी तरफ दान करो, मंदिर बनाओ, तीर्थ जाओ। इधर से पाप करो, उधर से पुण्य भी करते रहो तो लाभ और हानि बराबर होती रहें और आखिर में जोड़ पुण्य का हो जाय। तो जिन्दगी भर पाप करो और बुढ़ापे में थोड़ा पुण्य करो और हिसाब ठीक कर लो अपना। इस तरह एक चालाक गणित (CUNNING mathematics) हमने आध्यात्मिक जीवन के संबंध में पैदा कर ली है। एक आदमी शोषण करे इसको हमने बुरा न समझा। दान करे, इसकी हमने प्रशंसा की और हमने कभी यह न पूछा कि दान करने योग्य पैसा इकट्ठा कैसे होता है? दान करने योग्य पैसा इकट्ठा कैसे हो सकता है? नहीं, लेकिन उसका हमने विचार नहीं किया। दान पुण्य है, तो शोषण के पाप को दान के पुण्य से काटा जा सकता है। दान की हमने खूब प्रशंसा की है -- मंदिर बनाने की, तीर्थ बनाने की, साधु संन्यासियों को भोजन कराने की, ब्राह्मणों को भोजन कराने की, गाय दान कर देने की। हजार तरह की तरकीबें हमने ईजाद कीं जिनसे हम पाप करते रहें और उनको काटने के उपाय भी कर लें।

चरित्र नीचे गिरना निश्चित था क्योंकि जो मुल्क ऐसा सोचता है कि एक पाप को पुण्य करके काटा जा सकता है वह मुल्क कभी भी पाप से मुक्त नहीं हो सकता क्योंकि जबतक हमें यह ख्याल न हो कि पाप को किसी पुण्य से कभी नहीं काटा जा सकता, एक कर्म को दूसरे कर्म से नहीं काटा जा सकता है, तबतक उस पाप के प्रति हम बचने के उपाय खोजने की कोशिश करेंगे। इस धारणा ने हमारा जीवन ले लिया। मैं इसके संबंध में दो बात कहना चाहता हूं। एक तो बात यह कि कर्म बिलंबित फल नहीं लाता है, कर्म इसी क्षण फल लाता है। एक आदमी अभी क्रोध करता है तो अभी क्रोध के नर्क से गुजर जाता है। एक आदमी अभी चोरी करता है तो चोरी के उपाय, अपराध, पीडा डर

उन सबकी पीड़ाओं से अभी गुजर जाता है। एक आदमी अभी किसी की हत्या करता है तो हत्या करने के पहले और हत्या करने के बाद वह जिस मानसिक उत्पीडन, से, मानसिक भय से, मानसिक उत्ताप से गुजरता है वह उसकी पीड़ा से बहुत ज्यादा है जो मर गया। एक आदमी को मैं मार डालूं, उस आदमी को मरने में जितनी पीड़ा होगी उससे ज्यादा पीड़ा में से मारने के पहले और मारने के बाद मुझे गुजरना पड़ेगा। अगले जन्म की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी कि अगले जन्म में मुझे कोई मारे। नहीं, कृत्य तो अपने साथ ही फल को लिए हुए हैं। इधर मैंने कृत्य शुरू किया और उधर फल मेरे ऊपर टूटना शुरू हो गया। एक अच्छा काम आप करें, एक प्रेम का कृत्य, और उसके साथ ही उसकी सुवास, आनंद और सुगंध है। प्रेम के ही कृत्य के साथ उसके पीछे एक हवा है, शांति की, धन्यता की। पाप के साथ एक पश्चात्ताप है, एक पीड़ा है।

इस पुरानी धारणा की जगह नयी धारणा चाहिए भारत के मन को कि प्रत्येक कर्म का फल तत्क्षण है, आगे पीछे नहीं। इतना भी फासला नहीं है कि मैं कुछ कर सकूं। मैंने किया और करने के साथ ही फल भी उपलब्ध होना शुरू हो जाता है। मैं एक छत पर से कूद पड़ूं तो कूदने के साथ ही गिरना भी शुरू हो गया। कूदना और गिरना दो बातें नहीं हैं। कूदना उसी चीज का प्रारंभ है जिसको हम गिरना कहते हैं। मैंने क्रोध किया और क्रोध के साथ ही जलना हो गया। कर्म ही फल है इस उद्घोषणा को हमें मुल्क के प्राणों पर ठोंक देना होगा। इसलिए आगे सोच विचार का सवाल नहीं है, सोचना है तो इसी क्षण कि यह मुझे करना है या नहीं।

दूसरी बात, यह जो हमें दिखायी पड़ता है कि एक बेईमान आदमी सफल हो जाता है उस पर हमने कभी बहुत विचार नहीं किया, क्योंकि हमारी जो धारणा थी, उससे हमें व्याख्या मिल गयी इसलिए हमने विचार नहीं किया। जब एक बेईमान आदमी सफल होता है तब कभी आपने ख्याल किया कि बेईमान आदमी में और गुण भी होते हैं। और जब ईमानदार आदमी असफल होता है तो आपने कभी ख्याल किया, ईमानदार आदमी में और अयोग्यता भी हो सकती हैं। एक बेईमान आदमी, साहसी हो सकता है और एक ईमानदार आदमी कमजोर हो सकता है, हिम्मतहीन हो सकता है, कायर हो सकता है। और अगर बेईमान आदमी सफल होता है तो मैं आपसे कहता हूं कि सफल वह अपने साहस की वजह से हुआ है, बेईमानी की वजह से नहीं और अगर ईमानदार आदमी असफल होता है तो ईमानदारी की वजह से असफल नहीं होता, असफल होता

ह साहस की कमी की वजह से। एक आदमी की सफलता के बहुत कारण होते हैं। हालांकि ईमानदार आदमी असफल होता है तो उसको भी मजा इसी में आता है बतानें में कि, मैं ईमानदारी की वजह से असफल हो गया। ईमानदारी की वजह से दुनिया में कभी कोई असफल नहीं हुआ है और न हो सकता हे और बेईमानी की वजह से न कोई दुनिया में कभी सफल हुआ है, और न हो सकता है। औंर बहुत कारण हैं। बेईमान आदमी के पास और गुण भी हैं। वह साहसी हो सकता है, वह बुद्धिमान हो सकता है, वह आदमी संगठन की क्षमता में कुशल हो सकता है, वह आदमी भविष्य को देखने की अंतर्दृष्टि वाला हो सकता है और इन सारी चीजों से वह सफल हो जायेगा। और एक जिसको हम ईमानदार आदमी कहते हैं, हो सकता है वह सिर्फ ईमानदार हो और उसके पास अन्य कोई गुण न हों। न उसके पास साहस हो, न अंतर्दृष्टि हो, न जीवन को समझने की कोई कुशलता हो न समझ हो, न पहल लेने की हिम्मत हो तो वह असफल हो ही जायेगा। वह ईमानदार आदमी अपने मन मै यह सोचकर बहूत संतोष , बहुत सांत्वना पायेगा कि मैं इसलिए असफल हो गया कि मैं ईमानदार हूं। इसलिए आप असफल नहीं हो गये हैं, आपकी असफलता के दूसरे कारण हैं। पर यह ईमानदार आदमी उस सफल आदमी की निन्दा करना चाहेगा इस ईर्ष्यावश कि वह सफल हो गया है। उसकी निन्दा का एक ही उपाय है, यह कहना कि वह बेईमानी की वजह से सफल हो गया है। मैं आपसे कहना चाहता हूं कि जीवन के गणित में दुर्गुण कभी भी कोई समृद्धि, कोई सफलता नहीं लाते हैं, न ला सकते हैं।

एक आदमी चोरी करने जाता है, आप सिर्फ इतना ही देखते हैं कि वह चोर है। लेकिन चोर के पास जो हिम्मत है! है आपके पास? अपने घर में भी डर के चलते हैं आप, चोर दूसरे के घर में भी निडर चलता है। अपने घर के अंधेरे में भी आपके प्राण निकलते हैं। चोर दूसरे के घर के अंधेरे में भी ऐसा घूमता है जैसे दिन की रोशनी हो और अपना घर हो। यह गुण (Quality)) चोरी से बिल्कुल अलग बात है।

जापान में एक चोर था। उसकी बड़ी प्रसिद्धि थी। उसको लोग मास्टर थीफ कहते थे। कहते थे वैसा चोर नहीं हुआ कभी। कला गुरू था वह चोरों का और यहां तक उसकी प्रसिद्धि हो गयी थी कि जिस घर में वह चोरी कर लेता था उस घर के लोग गौरव से लोगों से कहते थे कि हमारे यहां मास्टर थीफ ने चोरी की है हम कोई साधारण समृद्ध लोग नहीं हैं। उस कलागुरू की

नजर भी हमारे घर की तरफ गयी है। लोग इसकी प्रशंसा करते। लोग प्रतीक्षा करते थे कि वह कलागुरू कभी उनके घर की तरफ भी नजर कर ले क्योंकि जिसके घर की तरफ वह देखता वह आदमी खानदानी रईस हो जाता।

वह चोर बूढ़ा हो गया । उसके लड़के ने उससे कहा कि आप तो बूढ़े हो गये, अब मेरा क्या होगा? मुझे कुछ सिखा दें। उस बूढ़े ने कहा, यह बड़ा कठिन मामला है। चोरी जितनी सरल दिखायी पड़ती है उतनी सरल चीज नहीं है। बड़ा जटिल विज्ञान है। उसमें बड़े गुण चाहिए। एक सैनिक से कम हिम्मत की जरूरत नहीं, एक संत से कम शांति की जरूरत नहीं, एक ज्ञानी से कम अंतर्दृष्टि की जरूरत नहीं, तब आदमी चोर बन सकता है। उसके लड़के ने कहा, क्या कहते हैं! संत, योद्धा, ज्ञानी, इनके गुण चाहिए? उस बूढ़े ने कहा, इनके गुण चाहिए। कभी चोरी सफलता नहीं लाती, ये गुण सफलता लाते हैं। चोरी तो अपने आप में असफल होने को आबद्ध है। इतने बल जोड़ दें तो सफल हो सकती है। फिर भी उस लड़के ने कहा कि कुछ मुझे सिखाइये। उसने कहा, चल तू रात मेरे साथ। जवान लड़का बाप के साथ अंधेरी रात में जाकर नगर के सम्राट के महल में पहुंच गया। बाप बूढ़ा है, उसकी उम्र कोई ७० साल पार कर चुकी है। वह जाकर दीवाल की इंटें फोड़ने लगा और लड़का खड़ा कांप रहा है। उस बूढ़े ने कहा, 'कांपना बन्द कर क्योंकि यहां कोई साहूकारी करने नहीं आये हैं कि जो कंपते हुए भी हो जाय। यहां चोरी करने आये हैं। हाथ कंपा कि गये।' सत्तर वर्ष का बूढ़ा है, वह इंटें ऐसे तोड़ रहा है जैसे कोई कारीगर मौज से अपने घर काम कर रहा हो। वह लड़का कांप रहा है कि यह दूसरे का घर है, कहीं आवाज न हो जाय, कहीं कुछ न हो जाय। और वह बूढ़ा ऐसी शांति से खोद रहा है इंटें जैसे अपना घर हो। उस लड़के ने कहा, 'बाबा, आपके हाथ नहीं कंपते?" उस बूढ़े ने कहा चोर तभी हुआ जा सकता है जब हम सबकी सम्पति अपनी मानते हों। चोर होना बहुत मुश्किल है। चोर होना आसान नहीं है। उसने इंटें तोड़ ली हैं, वह भीतर चला गया है। लड़का भी कांपते हुए उसके साथ पीछे गया है लेकिन उसकी छाती इतने जोर से धड़क रही है कि उसे समझ भी नहीं आ रहा है कि ऐसा तो कभी नहीं हुआ था। उस बूढ़े ने कहा, 'देखो, इतने घबराओगे तो सफलता बहुत मुश्किल है। बहुत शांत और बहुत ध्यानपूर्वक (meditatively) ही चोरी की जा सकती है। क्योंकि दूसरे का घर है। लोग सोये हुए हैं। तेरा तो हृदय इतनी जोर से धड़क रहा है कि उसकी धड़कन से लोग जग जायं। ऐसे काम चलेगा?

ऐसा धड़केगा तो चीजें गिर जायेंगी। धक्का लग जायगा, सब गड़बड़ हो जायगा। इस अंधेरे में तो इतनी कुशलता से जाना है कि जरा सी आवाज न हो। लेकिन लडके के तो पैर कांप रहे हैं और उसको चारों तरफ लोग दिखायी पड़ रहे हैं कि वह खड़ा है दीवाल के पास कोई! अब कोई जागा! किसी को खांसी आ गयी, कोई रात में बर्रा रहा है, आवाज कर रहा है और वह घबरा रहा है। बूढ़ा लेकिन उसको भीतर ले गया। वह ताले खोलता हुआ चला गया है। वह आखिरी अन्दर के कक्ष में पहुंच गया है। उसने लड़के को कहा कि तू भीतर जा और जो चीज तुझे पसन्द हो वह चीजें लेकर बाहर आजा। मैं बाहर खड़ा हूं। वह दरवाजे पर खड़ा है। लड़का भीतर गया। उसे तो कुछ दिखायी भी नहीं पड़ता, पसंद करने की बात तो बहुत दूर। उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि क्या वहां है और क्या नहीं है। और तभी उसने देखा कि उसके बाप ने दरवाजा बन्द कर दिया, जोर से दरवाजा पीटा, चिल्लाया और भाग गया। वह लड़का कमरे के भीतर है। सारे घर के लोग जाग गये हैं और दिया लिए, लालटेन लिए खोज कर रहे हैं। उस लड़के के तो प्राण सूख गये बिल्कुल। उसने सोचा, यह तो बाप ने मरवा डाला। यह कैसी चोरी सिखायी, यह क्या किया पागलपन?

अचानक जैसे ही खतरे की, इतनी स्थिति पैदा हो गयी वैसे ही विचार खत्म हो गये। इतने खतरे में विचार नहीं चल सकते। विचार चलने के लिए सुविधा (Comfort) चाहिए। इतने खतरे हैं कि जान जाने को है, तो उसके विचार शून्य हो गये। अभी कोई आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाय तो फिर मन चंचल नहीं रहेगा उस वक्त। मन के चंचल होने के लिए आराम से तकिया चाहिए, बिस्तर चाहिए तब मन चंचल होता है। जिन्दगी खतरे में पड़ जाय तो कहां की चंचलता, मन एकदम स्थिर हो जायगा। उसका मन स्थिर हो गया है और एकदम उसे कुछ अंतर्दृष्टि हुई। उसने दरवाजे को नाखून से खुरचा जैसे कि कोई बिल्ली या चूहे आवाज कर रहे हों। हालांकि उसे कुछ समझ में नहीं आया कि यह मैं क्यों कर रहा हूँ। एक नौकरानी बाहर से गुजरती थी। उसने देखने के लिए दरवाजा खोला कि भीतर शायद कोई बिल्ली है। चोर को भी वह खोज रही थी। उसने हाथ बढ़ा के, जो दिया हाथ में लिए थी भीतर झांककर देखा। अचानक उसने सोचा नहीं था कि नौकरानी हाथ बढ़ायेगी और दिया जला हुआ आगे होगा। इसका उसे कोई ख्याल ही न था, कोई विचार नहीं था, कोई योजना नहीं थी, लेकिन दिया देखकर अचानक उसके

मुंह से फूंक निकल गयी। दिया बुझ गया, उसने धक्का दिया और अंधेरे में भागा। दस पच्चीस लोग उसके पीछे भागे। आज उसे जिन्दगी में पहली दफा पता चला कि इतनी तेजी से भी भागा जा सकता है। वह जितनी तेजी से भाग रहा था, तीर की तरह जा रहा था। उसे आज पहली दफा पता चला कि उसका शरीर इतना गतिवान है जैसे तीर चल रहा हो। जब जान पर बाजी हो तो सारी शक्ति जग जाती है। एक कुएं के पास से गुजर रहा था। दस बीस कदम पीछे लोग रह गये थे और ऐसा लगता था कि वह अब पकड़ते हैं, अब पकडते हैं तभी उसे कुएं के पाट पर एक पत्थर दिखायी पड़ा। उसने पत्थर उठाया और कुएं में पटक दिया। जो पीछे लोग आ रहे थे वे कुएं को घेर कर खड़े हो गये। उन्होंने समझा कि चोर कुएं में कूद पड़ा है। वह एक वृक्ष के नीचे खड़ा यह सब देखता रहा। उन्होंने कहा, अब तो वह अपने हाथ से मर गया। कुआं बहुत गहरा है, अब सुबह देखेंगे। जिन्दा रहा तो ठीक, मर गया तो ठीक। वे वापस जाकर महल में सो गये।

वह लड़का अपने घर पहुंचा, देखा पिता कम्बल ओढ़कर सोया हुआ है। उसने क्रोध में कम्बल खींचा और कहा कि यह क्या मामला है? मेरी जान ही ले ली थी! उस बूढ़े ने कहा, "अब रात गड़बड़ मत करो, तुम आगये, अब सुबह बातचीत करेंगे। बस आगये ठीक है।" लड़के ने कहा, सुबह नहीं। हम तो एक ऐसे अनुभव से गुजर गये, यह क्या किया आपने? उसने कहा, "छोड़ो उस बात को, तुम आगये खत्म हो गयी बात। कल तुम खुद भी चोरी करने जा सकते हो।"

चोर सफल होता है, चोरी की वजह से नहीं। चोर सफल होता है दूसरे गुणों की वजह से और जब अचोर आदमी में उतने गुण होते हैं तो उसकी सफलता का क्या कहना। वह महावीर बन जाता है, बुद्ध बन जाता है,। बेईमान सफल होता है बेईमानी की वजह से नहीं, और दूसरे गुणों की वजह से और जब कभी ईमानदार आदमी उन गुणों को पैदा कर लेता है तो उसकी सफलता का क्या कहना, वह सुकरात बन जाता है, वह जीसस बन जाता है। आप हैरान हो जायेंगे दुनिया के बुरे आदमियों की सफलता के पीछे वे ही गुण हैं जो दुनिया के अच्छे से अच्छे आदमियों की सफलता के पीछे थे। गुण वही है, सफलता के। असफलता के दुर्गुण भी समान हैं। लेकिन हमने एक झूठी व्याख्या पकड़ ली और उसके हिसाब से हमने समझा था कि हमने सब मामला हल कर लिया। उसका नुकसान भारी पड़ा। सारी धारणा बदल देने की जरूरत है ताकि

नीचे से जड़ बदला जाय और आदमी के व्यक्तित्व को हम नयी बुनियाद दे सकें। इस संबंध में एक बात और, और फिर मैं तीसरा सूत्र कहकर अपनी बात पूरी करूंगा।

एक बात ध्यान रखना जरूरी है कि हमारी पूर्व कर्म की धारणा जब यह कहती है कि अभी मैं कर्म करूंगा और आगे कभी भविष्य में, कभी जन्मों के बाद फल मिलेगा तो वह धारणा हमें गुलाम बना देती है क्योंकि कर्म तो अभी कर दिया गया और फल भोगने के लिए में बंध गया। नहीं मालूम कबतक बंधे रहना पड़ेगा उस फल से। अनन्त जन्म हो चुके हैं। अनन्त कर्म आदमी ने किये हैं। उन सबसे आदमी बंधा हुआ है क्योंकि उनका फल अभी भोगना बाकी है। अभी फल भोगा नहीं गया। तो भारत में बंधे हुए की धारणा, एक परतंत्रता की धारणा विकसित हुई कि हर आदमी परतंत्र है, आगे के लिए बंधा हुआ है, पीछे के कामों से बंधा हुआ है। तो भारत की प्रतिभा के भीतर स्वतंत्रता का बोध कि मैं स्वतंत्र हूं यह मर गया। यह मर ही जायगा। जब मैं इतने कर्मों से बंधा हुआ हूं पीछे के, जिनके फल मुझे अभी भोगने पड़ेंगे और जिनको बदलने का कोई उपाय न रहा अब, तो स्वाभाविक रूप से मेरी चेतना बंधी हुई है, बद्ध है, बंधन में है यह धारणा पैदा हो गयी। और फिर जहां इतने बंधन मेरे भीतर हैं वहां एकाध और कोई बंधन ऊपर से आजाय, कोई दूसरा मुल्क हुकूमत जमा ले तो क्या फर्क पड़ता है? मैं तो बंधा ही हुआ हूं, और थोड़ा सा बंधन बढ़ता है तो क्या फर्क पड़ता है। हम इतने बंधे हुए मालूम होने लगे, कि और नयी गुलामी आजाये तो हमें कोई तकलीफ मालूम नहीं होती। हमने भारत में एक गुलाम आदमी पैदा कर दिया है इस धारणा की वजह से। मैं आपसे कहना चाहता हूं, प्रत्येक कर्म का फल तत्क्षण मिल जाता है और फिर आप समग्ररुपेण मुक्त हो जाते हैं। कर्म भी निपट गया, उसका फल भी उसके साथ निपट गया। आपकी चेतना फिर मुक्त है, आप फिर मुक्त हो गये हैं। हर घड़ी आप बाहर हो जाते हैं अपने बन्धन से। बंधन जिन्दगी भर साथ नहीं ढोने पड़ते हैं। वह जो हमारी चेतना है वह हमेशा मुक्त हो जाती है। हमने काम किया, फल भोगा और हम उसके बाहर हो गये। काम के साथ ही फल निपट जाता है इसलिए आप हमेशा स्वतंत्र हैं। मनुष्य की आत्मा मौलिक रूप से स्वतंत्र है। वह कभी बन्धन में नहीं रह जाती। वह कहीं भी बंधी हुई नहीं है। मौलिक स्वतंत्रता की गरिमा एक एक आदमी को मिलनी चाहिए तब हम स्वतंत्रता का आदर कर सकेंगे, स्वतंत्रता के लिए लड़ सकेंगे, स्वतंत्रता को बचाने के लिए जीवन

खो सकेंगे,। बंधे बंधाये लोग, बंधन में पड़े हुए लोग, जिनका चित्त इस जड़ता ने पकड़ लिया है कि हम तो बंधे ही हुए हैं, वे लोग स्वतंत्रता के साक्षी, स्वतंत्रता के मालिक, और स्वतंत्रता की घोषणा करनेवाली स्वतंत्र आत्माएं नहीं हो सकते हैं। इसलिए भारत इतने दिन गुलाम रहा है। इस गुलामी में न मुसलमानों का हाथ है, न हुणों का, न तुर्कों का, न अंग्रेजों का। इस गुलामी में भारत के उन संत सहात्माओं का हाथ है जिन्होंने एक एक आदमी की आंतरिक स्वतंत्रता को नष्ट करने की धारणा दे दी। गौरव चला गया, गरिमा चली गयी। जो गरिमा एक एक आदमी की होनी चाहिए वह खत्म हो गयी। बंधन में पड़े आदमी की कोई गरिमा होती है, कोई गौरव होता है? पैर में जंजीरें बंधी हैं, हाथ में जंजीरें बंधी हैं, गर्दन फांसी पर लटकी है, ऐसे आदमी की कोई गरिमा होती है? कर्म के इस सिद्धांत ने आपके पैरों में हजारों जंजीरें डाल दी हैं, हाथों में जंजीरें डाल दी हैं और गर्दन फांसी पर लटका दी है। आप चौबीस घंटे फांसी पर लटके हैं, चौबीस घंटे बंधन में हैं। एक ही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह मुक्ति मिल जाय, बंधन से छुटकारा हो जाय। इस तरह के आदमी की तस्वीर बहुत बेहूदी और कुरूप है। इस तरह के आदमी का आत्मिक सम्मान का भाव भी नष्ट हो जाता है।

तीसरा अंतिम सूत्र है, भारत ने एक तीसरी बीमारी हजारों साल से पोषी है और वह बीमारी है अहंकेन्द्रीकरण (Egocentredness) की। यह बड़ी अजीब बात मालूम पड़ेगी। अहम् केन्द्रीकरण हो गया हमारा। हम दुनिया में सबसे ज्यादा इस तरह की बात करनेवाले लोग हैं कि अहंकार छोड़ो लेकिन हमारा पूरा जीवन दर्शन व्यक्ति को अहम् केन्द्रित बनाने वाला है यह बड़े आश्चर्य की घटना है। भारत में इसीलिए समाज की कोई धारणा, राष्ट्र की कोई धारणा विकसित नहीं हो सकी कभी भी। भारत कभी भी राष्ट्र न था और न है और न अभी पुराने आधारों पर राष्ट्र होनेकी संभावना है। भारत में न कभी समाज था, न है और न आगे कोई समाज की धारणा बन सकती है। भारत की धारणा अबतक यह रही है कि एक एक व्यक्ति के अपने कर्म हैं, अपना फल है। एक एक व्यक्ति को अपना मोक्ष खोजना है, अपना स्वर्ग खोजना है। दूसरे व्यक्ति से लेना देना क्या है? एक एक व्यक्ति की आत्मा को अपनी अपनी यात्रा पूरी करनी है। दूसरे से संबंध क्या है? इसलिए एक अंतर संबंध कभी हमारे भीतर विकसित न हो सका।

सुनी होगी बाल्मीकि की कथा। बाल्मीकि तो डाकू था, लुटेरा था। एक

दफा उसने जाते हुए ऋषियों को भी रोक लिया रास्ते में लूटने के लिए। उन ऋषियों ने क्या कहा? उन ऋषियों ने कहा, 'तू हमें लूटता है तो ठीक है, लूट ले, लेकिन किसके लिए लूटता है?" यह घटना थोड़ी समझ लेनी जरूरी है। उसने कहा, 'अपनी पत्नी के लिए, अपने बच्चे के लिए, अपने बूढ़े बाप के लिए, अपनी मां के लिए, उनके लिए लूटता हूं।' उन ऋषियों ने कहा कि तू फिर एक काम कर, हमें तू बांध दे वृक्षों से, और जाकर अपनी पत्नी, अपनी मां, अपने बाप से पूछ आ कि लूटने से जो पाप का फल मिलेगा वह उसमें भी भागीदार होंगे कि नहीं। नर्क जायगा तू इतनी लुटाई, इतनी हत्या करने से तो तेरी पत्नी, तेरे बेटे, तेरे मां बाप नर्क जाने के लिए तेरे साथ होंगे कि नहीं? यह तू पूछ कर आ जा। बाल्या ने उनको बांध दिया और अपनी मां से पूछने गया। मां ने कहा कि इससे हमें क्या मतलब, तुम बेटे हो, हमें बुढ़ापे में खाना देते हो उससे मतलब है। हमें इससे कोई प्रयोजन नहीं है कि तुम कहां जाओगे और कहां नहीं जाओगे, वह तुम समझो। अपने कर्म का फल, आदमी को स्वयं भोगना पड़ता है। बाल्या तो बहुत चौंका। उसने अपनी पत्नी को पूछा, पत्नी ने कहा, तुम्हारा कर्तव्य है, तुम मेरे पति हो, तो मेरा पालनपोषण करते हो। मुझे पता नहीं कि तुम कहां से पैसे लाते हो और क्या करते हो। वह तुम्हारा अपना जानना है। नर्क जाओगे तो तुम, स्वर्ग जाओगे तो तुम, मुझसे क्या लेना देना है। बाल्या तो घबरा गया। उसको पहली दफा पता चला कि कर्म मेरे हैं और फल मेरा है। किसीसे कोई मेरा संबंध नहीं है सिवाय इसके कि एक मेरी पत्नी है, वह एक बाहरी संबंध है। एक मेरी मां है वह भी एक बाहरी संबंध है। अंतर संबंध कोई भी नहीं है, जहां मेरे व्यक्तित्व का पूरा भार लेने को कोई तैयार हो। वह आया और ऋषियों के चरणों में गिर पड़ा और खुद भी ऋषि हो गया।

आमतौर से यह कथा कही जाती है यह बताने के लिए कि ऋषियों ने बाल्या को ज्ञान दिया पर मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि ऋषियों ने बाल्या को अहंकेन्द्रित बना दिया। उनकी शिक्षा का जो फल हुआ वह कुल इतना कि बाल्या को यह दिखायी पड़ा कि मैं अकेला हूं और सब अकेले हैं। मुझे अपनी फिक्र करनी है, उन्हें अपनी फिक्र करनी है। हमारे बीच कोई सेतु नहीं, कोई संबंध नहीं। एक एक आदमी एक बंद खिड़की वाला मकान है। दूसरे आदमी तक न कोई खिड़की खुलती है न कोई द्वार खुलता है, दूसरे से संबंधित होने का उपाय नहीं। तो एक अजीब धारणा पैदा हुई कि एक एक आदमी को अपनी

फिक्र करनी है। इस धारणा के अनुकूल जो समाज विकसित हुआ उसमें एक एक आदमी अपनी फिक्र कर रहा है। उसमें कोई आदमी किसी दूसरे की फिक्र में नहीं है और जिस देश में हर आदमी अपनी अपनी फिक्र कर रहा हो उस देश में सारे आदमी परेशानी में पड़ जाये तो आश्चर्य क्या। दूसरे का कोई मूल्य नहीं है, मेरा मूल्य है; तू का कोई भी मूल्य नहीं है क्योंकि कोई संबंध ही नहीं है। आप कहेंगे लेकिन हमने तो अहिंसा की धारणा भी विकसित की है, दान की धारणा भी विकसित की, सेवा की धारणा भी विकसित की। तो मैं आपको कहना चाहूंगा और आप बहुत हैरान होंगे इस बात को जानकर कि हिन्दुस्तान ने जिस अहिंसा की धारणा विकसित की वह धारणा भी अहं केन्द्रित ही है। इसीलिए हमने अहिंसा शब्द का प्रयोग किया, प्रेम शब्द का प्रयोग नहीं किया। अहिंसा का मतलब है दूसरे की हिंसा नहीं करनी है। क्यों? इसलिए नहीं कि हिंसा से दूसरे को दुःख पहुंचेगा बल्कि इसलिए कि हिंसा से कर्म–बन्ध होगा और तुमको नर्क भोगना पड़ेगा। जो जोर है वह इस बात पर नहीं है कि दूसरे दुःख पायेंगे, वह इस बात पर है कि दूसरे को दुख देने से बुरा कर्म होता है और आदमी को नर्क भोगना पड़ता है। अगर नर्क से बचना चाहते हैं तो दूसरे को दुख मत देना। दूसरे को दुःख देने के पीछे भी धारणा यह है कि मैं कहीं आगे दुख में न पड़ जाऊं। अगर हमको यह पता चल जाय कि दूसरे को दुख देने से कोई नर्क नहीं होता तो हम तत्क्षण दूसरे को दुख देने को राजी हो जायेंगे। हम कहते हैं गरीब को दान दो, इसलिए नहीं कि गरीब दुखी है, बल्कि इसलिए कि गरीब को दान देने से स्वर्ग मिलता है। हमारा जोर किस बात पर है? हमारा जोर इस बात पर है कि दान देने से स्वर्ग का रास्ता तय होता है, गरीब की गरीबी से हमें कोई मतलब नहीं। बल्कि एक संन्यासी ने तो मुझे यहां तक कहा कि दुनियां में अगर गरीब मिट जायेंगे तो फिर दान कैसे हो सकेंगे और अगर दान नहीं हो सका तो मोक्ष का द्वार बन्द हो जायेगा क्योंकि बिना दानी हुए कोई आदमी मोक्ष नहीं जा सकता इसलिए मोक्ष जाने के लिए दुनियां में गरीबों को बनाये रखना बहुत जरूरी है! किसको दान देंगे फिर आप? कौन दान लेगा आपसे? आपके स्वर्ग के रास्ते पर कुछ गरीब भिखारियों का खड़ा होना हमेशा आवश्यक है ताकि आप दान देकर स्वर्ग जा सकें! हमारे दान में दरिद्र पर दया नहीं है, हमारे दान में दरिद्र की दरिद्रता का भी शोषण है क्योंकि उसकी दरिद्रता भी आधार बनायी जा रही है अपने स्वर्ग के लिए।

एक बिल्कुल ही अहम् केन्द्रित मनुष्य की चेतना हमने अबतक विकसित

की है। इसलिए हमने प्रेम शब्द का उपयोग नहीं किया क्योंकि प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण हो जाता है, अहिंसा में मैं ही महत्वपूर्ण हूं। अहिंसा नकारात्मक है हिंसा नहीं करनी है। बस, इसके आगे नहीं बढ़ना है। प्रेम कहता है हिंसा नहीं करनी है तो ठीक है लेकिन दूसरे को आनंदित भी करना है। प्रेम में दूसरा महत्वपूर्ण है, और अहिंसा में मैं महत्वपूर्ण है। हमारा सारा धर्म स्व केन्द्रित है, हमारी कौम का सारा मन अहंकार केन्द्रित है। एक आदमी तप भी कर रहा है— धूप में खड़ा होकर तो आप यह मत समझना कि किसी और के लिए कर रहा है। कर रहा है अपने लिए, उसे स्वर्ग जाना है, उसे मोक्ष जीतना है। मुल्क भूखा मर रहा है। और एक आदमी अपने स्वर्ग जाने के उपाय कर रहा है। मुल्क दरिद्रता में सड़ रहा है। और एक आदमी अपने मोक्ष की आयोजना में लगा हुआ है और हम सब इसको आदर दे रहे हैं। हम सब कह रहे हैं कि बहुत धन्य पुरुष है, मोक्ष जाने की कोशिश कर रहा है।

मैंने सुना है जापान में पहली दफा बुद्ध के ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। जिस भिक्षु ने अनुवाद करने की कोशिश की वह बहुत गरीब भिक्षु था। एक हजार साल पहले की बात है। बुद्ध के पूरे ग्रंथों का जापानी में अनुवाद करवाने में कमसे कम दस हजार रूपये का खर्च था। उस भिक्षु ने गांव गांव जाकर रूपये इकट्ठा किये। वह दस हजार रूपये इकट्ठे कर ही पाया था कि उस इलाके मे जहां वह रहता था, अकाल पड़ गया। तो उसने वह दस हजार रूपये अकाल के गांव में दे दिये। उसके साथियों ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो ? पर वह कुछ भी नहीं बोला। उसने फिर रूपये मांगने शरू कर दिये। फि बेचारा दस साल में मुश्किल से दस हजार रूपये इकट्ठा कर पाया और बाढ़ आगयी। उसने वह दस हजार रूपये बाढ़ में दे दिये। अब वह ७० साल का हो गया था। उनके मित्रों ने कहा, तुम पागल होगये हो ! ग्रन्थों का अनुवाद कब होगा ? लेकिन वह हंसा और उसने फिर भीख मांगनी शुरू कर दी। जब वह ९० साल का था तब फिर दस हजार रूपये इकट्ठे कर पाया। संयोग की बात कि न कोई अकाल पड़ा, न कोई बाढ़ आयी। तो वह ग्रन्थों का अनुवाद हुआ और छपा। ग्रन्थ में उसने लिखा 'तीसरा संस्करण'। दो संस्करण पहले निकल चुके लेकिन वे अदृश्य हैं। एक उस समय निकला जब अकाल पड़ा था, एक उस समय, जब बाढ़ आयी थी। अब यह तीसरा निकल रहा है। वे दो बहुत अद्भुत थे, उनके मुकाबले में यह कुछ भी नहीं है।

यह धारणा भारत में विकसित नहीं हो सकी है और जबतक विकसित न हो तबतक कोई मुल्क नैतिक नहीं हो सकता, न धार्मिक हो सकता है। भारत का

धर्म भी अहंकारग्रस्त है। एक नयी दृष्टि इस देश में जरूरी है कि दूसरा भी मूल्यवान है, मुझसे ज्यादा मूल्यवान। चारों तरफ जो जीवन है वह मुझसे बहुत ज्यादा मूल्यवान है और अगर उस जीवन के लिए मैं मिट भी जाऊं तो भी मैं काम आगया। वह जो चारों तरफ जीवन है, उस जीवन की सेवा से बड़ी कोई प्रार्थना नहीं है, उस जीवन को प्रेम देने से बड़ा कोई परमात्मा नहीं है। सब और वह जो विराट जीवन है उस विराट जीवन के हम अंग हैं। इसकी फिक्र छोड़ दें कि 'मेरा मोक्ष' क्योंकि मेरा कोई मोक्ष नहीं होता है। जब 'मैं' मिट जाता है तब आदमी मुक्त होता है और जो आदमी जितने विराटतर जीवन के चरणों में अपने 'मैं' को समर्पित कर देता है वह उतना ही मिट जाता है और मुक्त हो जाता है।

ये तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। इनकी वजह से भारत दुर्भाग्य से भर गया है। अगर इन तीन सूत्रों पर हमारी जीवन चिन्तना को बदला जा सके तो कोई कारण नहीं है कि हम अपने देश की सोई हुई प्रतिभा को वापस न जगा लें, सोई हुई आत्मा फिर से न उठ जाए और हम उत्साह से भर जाएं, हम जीवन की उत्फुल्लता से भर जायं, हम कुछ करने की तीव्र प्रेरणा से भर जायं और भविष्य निर्माण के सपने हमारी आंखों में निवास करने लगें। काश! यह हो सके तो भारत का सौभाग्य उदय हो सकता है।

★

आनंद खोज की सम्यक् दिशा

(एक व्यक्तिगत चर्चा से)

संकलनः रमा अरविंद

अनक लोगों के मन में यह प्रश्न उठता है कि जीवन में सत्य को पाने की क्या जरूरत है? जीवन इतना छोटा है उसमें सत्य को पाने का श्रम क्यों उठाया जाये? जब सिनेमा देखकर और संगीत सुनकर ही आनंद उपलब्ध हो सकता है, तो जीवन को ऐसे ही बिता देने में क्या भूल है?

यह प्रश्न इसलिए उठता है, क्योंकि हमें शायद लगता है कि सत्य और आनंद अलग अलग हैं। लेकिन नहीं, सत्य और आनंद दो बातें नहीं हैं। जीवन में सत्य उपलब्ध हो तो ही आनंद उपलब्ध होता है। परमात्मा उपलब्ध हो तो ही आनंद उपलब्ध होता है। आनंद, सत्य या परमात्मा एक ही बात को व्यक्त करने के अलग अलग तरीके हैं। तब इस भांति न सोचें कि सत्य की क्या जरूरत है? सोचें इस भांति कि आनंद की क्या जरूरत है? और आनंद की जरूरत तो सभी को मालुम पड़ती है, उन्हें भी जिनके मन में इस तरह के प्रश्न उठते हैं। संगीत और सिनेमा में जिन्हें आनंद दिखाई पड़ता है उन्हें यह बात समझ लेना जरूरी है कि मात्र दुःख को भूल जाना ही आनंद नहीं है। सिनेमा, संगीत या इस तरह की और सारी व्यवस्थायें केवल दुख को भुलाती हैं, आनंद को देती नहीं। शराब भी दुख को भूला देती है, संगीत भी, सिनेमा भी, सेक्स भी। इस तरह दुख को भूल जाना एक बात है और आनंद को उपलब्ध कर लेना बिलकुल ही दूसरी बात है।

एक आदमी दरिद्र है और अपनी दरिद्रता को भूल जाए यह एक बात है,

और वह समृद्ध हो जाए यह बिलकुल ही दूसरी बात है। दुख को भूल जाने से सुख का भान पैदा होता है। सुख केवल दुख का विस्मरण (Forget fulness) मात्र है। और आनंद? आनंद बात ही अलग है, वह किसी चीज का विस्मरण नहीं, स्मरण है। वह किसी बीज की उपलब्धि है, विधायक उपलब्धि। आनंद विधायक (Positive) हैं, सुख नकारात्मक (Negative) है।

एक आदमी दुखी है। इस दुख को हटाने के दो उपाय हैं। एक उपाय तो यह है कि वह जाये और संगीत सुने या किसी और चीज में इस भांति डूब जाए कि दुख की उसे याद ही न रहे। संगीत में इतना तन्मय हो जाए कि उसका चित्त दूसरी तरफ जाना बंद कर दे, तो उतनी देर को उसे दुख भूला रहेगा लेकिन इससे दुख मिटता नहीं है। संगीत से जैसे ही चित्त वापस लौटेगा, दुख अपनी पूरी ताकत से पुनः खड़ा हो जायेगा। जितनी देर वह संगीत में अपने को भूला था, उतनी देर भीतर दुख सरक रहा था, संग्रहीत हो रहा था। जैसे ही संगीत से मन हटेगा दुख अपने दुगुने वेग से सामने खड़ा हो जायेगा। अब उसे पुनः विस्मृत करने के लिए किसी ज्यादा गहरे भुलावे की जरूरत पड़ेगी। तो फिर शराब है, और दूसरे रास्ते हैं जिनसे चित्त को बेहोश किया जा सकता है। लेकिन स्मरण रहे यह बेहोशी आनंद नहीं है। बल्कि सचाई तो यह है कि जो आदमी जितना ज्यादा दुखी होता है उतना ही स्वयं को भूलने का रास्ता खोजता है। दुख से ही यह पलायन निकलता है। दुख से ही कहीं डूब जाने की, भागने की और मूर्छित हो जाने की आकांक्षा पैदा होती है। दुख से ही लोग भागते हैं। सुख से तो कोई भागता नहीं। तो अगर आप यह कहते हैं कि जब मैं सिनेमा में बैठता हूं तो बहुत सुख मिलता है तो स्वभावतः ही प्रश्न उठता है कि जब आप सिनेमा में नहीं होते तब क्या मिलता होगा? तब निश्चित ही दुख मिलता होगा। यह इस बात की ही घोषणा है कि आप दुखी हैं। लेकिन सिनेमा में बैठकर दुख मिट कैसे जायेगा? दुख की धारा तो भीतर सरकती रहेगी। हां, जितने ज्यादा आप दुखी होगें सिनेमा में उतना ही ज्यादा सुख अनुभव होगा। जो सच में आनंदित है उसे तो शायद कोई सुख प्रतीत नहीं होगा,। और ये जो हमारी दृष्टि है कि इसी तरह हम अपना पूरा जीवन क्यों न बिता दें—मूर्छित होकर, भूल कर, तब तो उचित है कि एक आदमी जीवन भर सोया रहे सिनेमा की भी क्या जरूरत है? और अगर जीवन भर सोना कठिन है तो फिर जीने की भी क्या जरूरत है? मर जायें और कब्र में सो जायें तो सारे दुख भूल जायेंगे। इसी प्रवृत्ति से आत्मघात की भावना पैदा

होती है। सिनेमा देखने वाला. शराब पीने वाला और संगीत में डूबने वाला यही आदमी अगर अपने तर्क की अंतिम सीमा पर पहुंच जाये तो वह कहेगा: जीने की जरूरत क्या है? जीने में दुख है तो मैं मरा जाता हूं। यह सब आत्मघाती (Suicidal) प्रवृतियां है। जब भी हम जीवन को भूलना चाहते हैं तभी हम आत्मघाती हो जाते हैं। लेकिन जीवन का आनंद उसे भूलने में नहीं उसकी परिपूर्णता में उसे जान लेने में है।

एक बहुत बड़ा संगीतज्ञ हुआ। उसकी अनोखी शर्तें हुआ करती थीं। एक राजमहल में वह अपना संगीत सुनाने को गया। उसने कहा कि मैं एक ही शर्त पर अपनी वीणा बजाऊंगा कि सुनने वालों में से किसी का भी सिर न हिले। और अगर कोई सिर हिला तो मैं वीणा बजाना बंद कर दूंगा।

वह राजा भी अपनी ही तरह का था। उसने कहा वीणा रोकने की कोई जरूरत नहीं। हमारे आदमी तैनात रहेंगे और जो सिर हिलेगा वे उस सिर को ही काट कर अलग कर देंगे।

संध्या सारे नगर में यह सूचना करवा दी गई कि जो लोग सुनने आयें थोड़ा समझ कर आयें, अगर संगीत सुनते वक्त कोई सिर हिला तो वह अलग करवा दिया जायेगा। लाखों लोग संगीत सुनने को उत्सुक थे। उतना बड़ा संगीतज्ञ गांव में आया था। सबको अपने दुख को भूलने का एक सुअवसर मिला था। कौन उसे चूकना चाहता? लेकिन इतनी दूर तक सुख लेने को कोई भी राजी न था। गर्दन कटवाने के मूल्य पर संगीत सुनने को कौन राजी होता? भूल से गर्दन हिल भी सकती थी। और हो सकता है सिर संगीत के लिये न हिला हो, मक्खी बैठ गई हो और गर्दन हिल गई हो या हो सकता है किसी और कारण से हिल गई हो। लोग जानते थे कि राजा पागल है और फिर बाद में इस बात की कोई सुनवाई न होगी कि गर्दन किसलिये हिली थी। बस गर्दन का हिलना ही काफी हो जायेगा। इसके बावजूद भी उस रात्रि कोई दो तीन सौ लोग संगीत सुनने आये। वे लोग जो जीवन खोने के मूल्य पर भी सुख चाहते थे वहां आये। वीणा बजी। कोई घंटे भर तक लोग ऐसे बैठे रहे जैसे मूर्तियां हों। लोगों ने जैसे डर के कारण सांस भी न ली हो। दरवाजे बंद करवा दिये गये थे ताकि कोई भाग न जाये। नंगी तलवारें लिये हुये सैनिक खड़े थे किसी की भी गर्दन एक क्षण में अलग की जा सकती थी।

घंटा बीता, दो घंटे बीते, आधी रात होने के करीब आ गई। फिर राजा हैरान हुआ और उसके सिपाही भी हैरान हुये जो कि नंगी तलवारें लिये हुये

खड़े थे। उन्होंने देखा दस–पंद्रह सिर धीरे धीरे हिलने लगे। संख्या और बढ़ी। रात पूरी होते होते कोई चालीस–पचास सिर हिलने लगे थे। वे पचास लोग पकड़ लिये गये। राजा ने उस संगीतज्ञ को कहा "इनकी गर्दन अलग करवा दें?" उस संगीतज्ञ ने कहा "नहीं। मैंने वह शर्त बहुत और अर्थों में रखी थी। अब यही वे लोग हैं जो मेरे संगीत को सुनने के सच्चे अधिकारी हैं। कल सिर्फ येही लोग संगीत सुनने आ सकेंगे।"

राजा ने उन लोगों से कहा "ठीक है कि संगीतज्ञ की शर्त का यह अर्थ रहा हो, लेकिन तुम्हें तो यह पता न था! पागलो! तुमने गर्दन क्यों हिलाई? उन आदमियों ने कहा "हमने गर्दन नहीं हिलाई, गर्दन हिल गई होगी। क्योंकि जब तक हम मौजूद थे गर्दन नहीं हिली, लेकिन जब हम गैरमौजूद हो गये फिर हमें कोई पता नहीं। जब तक हम सजग थे, जब तक हमें होश था, हम गर्दन संभाले रहे। फिर एक घड़ी ऐसी आ गई जब हमें कोई होश नहीं रहा। हम संगीत में इतने डूब गये कि लगभग बेहोश ही हो गये। उस बीच फिर गर्दन हिली हो तो हमें कोई पता नहीं है। तो अब भला आप हमारी गर्दन कटवा लें लेकिन कसूरवार हम नहीं हैं। क्योंकि हम मौजूद ही नहीं थे। हम बेहोश थे। अपने होश में हमने गर्दन नहीं हिलाई।"

क्या इतनी बेहोशी संगीत से पैदा हो सकती है?

जरूर हो सकती है। मनुष्य के जीवन में बेहोशी के बहुत रास्ते हैं। जितनी इन्द्रियां हैं उतने ही बेहोश होने के रास्ते भी हैं। प्रत्येक इन्द्रियका बेहोश होने का अपना रास्ता है। कान पर ध्वनियों के द्वारा बेहोशी लाई जा सकती है। अगर इस तरह के स्वर और इस तरह की ध्वनियां कान पर फेंकी जायें कि कान में जो सचेतना है वह सो जाये, शिथिल हो जाये– तो धीरे धीरे कान तो बेहोश होगा ही उसके साथ ही पूरा चित्त भी सो जायेगा, क्योंकि इस हालत में कान के पास ही सारा मन एकाग्र और इकट्ठा हो जायेगा और जैसे ही कान में शिथिलता आयेगी उसके साथ ही पूरा चित्त भी शिथिल होकर बेहोश हो जायेगा। इसी तरह आंखे बेहोश करवा सकती हैं। सौन्दर्य को देखकर आंखे बेहोश हो सकती हैं। और आंखें बेहोश हो जायें तो पीछे से पूरा चित्त बेहोश हो सकता है।

और इस भांति अगर हम बेहोश हो जायें तो होश में लौटने पर लगेगा कि कितना अच्छा हुआ! क्योंकि इस बीच किसी भी दुख का कोई पता न था, कोई चिंता न थी, कोई पीडा न थी, कोई कष्ट न था, और कोई समस्या न

थी। नहीं थी इसलिये क्योंकि आप ही नहीं थे। आप होते तो ये सारी चीजे होतीं। आप गैरमौजूद थे इसलिये कोई चिन्ता न थी, कोई दुख न था, कोई समस्या न थी। दुख तो था लेकिन उसे जानने के लिये जो होश चाहिये वह खो गया था। इसलिये उसका कोई पता नहीं चलता था। इसे जो लोग आनंद समझ लेते हैं, वे भूल में पड़ जाते हैं। उनका जीवन बिना आनंद को जाने एक बेहोशी में ही बीत जाता है! और आनंद से वे सदा के लिये अपरिचित ही रह जाते हैं।

इसीलिये मैं कहता हूं के सत्य की खोज की जरूरत है, क्योंकि उसके बिना आनंद की कोई उपलब्धि न किसी को हुई है और न हो सकती है। अब अगर कोई यही पूछने लगे कि आनंद की खोज की क्या जरुरत है? तो थोड़ी कठिनाई हो जायेगी। हालांकि अब तक किसी आदमी ने वस्तुतः ऐसा प्रश्न पूछा नहीं है। दस-हजार वर्षों में आदमी ने बहुत प्रश्न पूछे हैं, लेकिन किसी आदमी ने यह नहीं पूछा कि आनंद की खोज की जरूरत क्या है? क्योंकि इस बात को पूछने का अर्थ यह होगा कि हम दुख से तृप्त हैं। लेकिन दुख से तो कोई भी तृप्त नहीं है। अगर दुख से ही तृप्त होते तो फिर आप सिनेमा भी क्यों जाते? संगीत भी क्यों सुनते? वह आनंद की ही खोज चल रही है, लेकिन गलत दिशा में। गलत दिशा में इसलिये क्योंकि दुख को भूलने से आनंद उपलब्ध नहीं होता। हां, आनंद उपलब्ध हो जाये तो दुख जरूर विलीन हो जाता है। अंधेरे को भूलने से प्रकाश उपलब्ध नहीं होता। कमरे में अंधकार हो और मैं आंख बंद कर के बैठ जाऊं और भूल जाऊं अंधेरे को, तो भी कमरा अंधेरा ही रहेगा। लेकिन हां, दिया मैं जला लूं तो अंधेरा जरूर विलीन हो जायेगा।

एक बात तय है कि हम जो हैं, जैसे हैं, वैसे होने से हम तृप्त नहीं हैं। इसीलिये खोज की जरूरत है। जो तृप्त है उसे खोज की कोई भी जरूरत नहीं है। हम जो हैं उससे तृप्त नहीं हैं। हम जहां हैं वहां से तृप्त नहीं हैं। भीतर एक बेचैनी है, एक पीड़ा है, जो निरन्तर कहे जा रही है कि कुछ गलत है, कुछ गड़बड़ है। वही बेचैनी कहती है—खो जो! उसे फिर सत्य नाम दो चाहे और कोई नाम दो उससे भेद नहीं पड़ता। संगीत में और सिनेमा में भी उसकी ही खोज चल रही है। लेकिन वह दिशा गलत और भ्रान्त है। जब कोई आत्मा की दिशा में खोज करता है, तब ठीक और सम्यक् दिशा में उसकी खोज शुरू होती है। क्योंकि दुख को भूलने से आज तक कोई आनंद को उपलब्ध नहीं हुआ है, लेकिन आत्मा को जान लेने से व्यक्ति जरूर आनंद को उपलब्ध हो जाता है। जिन्होंने उस सत्य की थोड़ी भी झलक पा ली है उनके पूरे जीवन में एक क्रांति

हो जाती है। उनका सारा जीवन आनंद की और मंगल की वर्षा बन जाता है। फिर वे बाहर संगीत में भूलने नहीं जाते क्योंकि उनके हृदय की वीणा पर स्वयं एक संगीत बजने लगता है। फिर वे बाहर सुख की खोज में नहीं भटकते हैं, क्योंकि उनके भीतर एक आनंद का झरना फूट जाता है।

जो भीतर दुखी है, वह बाहर सुख को खोजता है, लेकिन जो भीतर दुखी है वह बाहर सुख को कैसे पा सकेगा? जो भीतर आनंद से भर जाता है, उसकी बाहर सुख की खोज जरूर बंद हो जाती है, क्योंकि जिसे वह खोजता था वह तो उसे स्वयं के भीतर ही उपलब्ध हो गया है।

एक भिखारी एक बड़ी महानगरी में मरा। वह एक ही जगह पर बैठ भीख मांगता रहा। जिंदगी भर वहीं बैठकर एक एक पैसे के लिये गिड़गिड़ाया। वहीं जिया और वहीं मरा भी। उसके मर जाने पर उसकी लाश को म्यूनिसिपल कर्मचारी घसीटकर मरघट ले गये। उसके कपड़े चिथड़ों में आग लगा दी गई। लोगों ने सोचा—तीस साल तक उस भिखारी ने इस जमीन को खराब और अपवित्र किया है, क्यों न इस भूमि की थोड़ी से मिट्टी को खुदवा कर फेंक दिया जाये? मिट्टी जब बदली गई तो वे हैरान रह गये। जहां वह भिखारी बैठा करता था वहीं एक बड़ा खजाना गड़ा मिला। वह उसी भूमि पर बैठकर, उसी खजाने के ऊपर बैठ कर, तीस वर्षों तक एक एक पैसे के लिये भीख मांगता रहा। उसे कोई कल्पना भी न थी कि जिस भूमि पर वह बैठता है वहां कोई खजाना भी हो सकता है।

यह किसी एक भिखारी की कहानी नहीं है, यह हर आदमी की कहानी है। हर आदमी जहां बैठा है, जहां एक एक पैसे के सुख के लिये गिड़गिड़ा रहा है, मांग रहा है और हाथ फैला रहा है, उसी जमीन में, उसके ही नीचे बहुत बड़े आनंद के खजाने गड़े हुये हैं। यह उसकी मर्जी है कि वह उन्हें खोजता है या नहीं, कोई उसे मजबूर नहीं कर सकता है।

अगर उस भिखमंगे को जाकर मैंने कहा होता—"मित्र, गड़े हुये खजाने की खोज करो।" और वह मुझसे कहता "—क्या जरूरत है मुझे गड़े हुये खजाने की खोज की? भीख मांग लेता हूं और मजे से जीता हूं। मैं क्यों खोजूं? मैं तो ऐसे ही जिंदगी बिता दूंगा।

तो मैं उससे क्या कहता? कहता कि ठीक है मांगो भीख! लेकिन जो भीख मांग रहा है वह कहे कि मुझे खजाने की कोई जरूरत नहीं है तो वह पागल है। अगर जरूरत नहीं है तो भीख क्यों मांग रहा है?

सिनेमा और संगीत में सुख खोज रहा है और कहे कि आनंद की खोज की मुझे क्या जरूरत है? तो वह पागल है, नहीं तो फिर सिनेमा में, संगीत में, शराब में और सेक्स में किस की भीख मांग रहा है? किसको खोज रहा है?

हम भीख मांगने वाले लोग हैं और जब कोई हमें खजाने की खबर देता है तो हमें विश्वास नहीं आता क्योंकि जो एक एक पैसे की भीख मांगता रहा है उसे विश्वास ही नहीं हो सकता कि खजाना भी हो सकता है। भीख मांगने वाला मन खजाने पर विश्वास नहीं कर पाता। उसे खजाना मिल भी जाये तो वह यही सोचेगा कि कहीं मैं सपना तो नहीं देख रहा हूं? उसे यह विश्वास ही नहीं आता है कि मैं भीख मांगने वाला और मुझे खजाना भी मिल सकता है! इसी बात को भुलाने के लिये वह कहना शुरू करता है कि जरूरत क्या है खजाने खोजने की? मैं तो अपनी भीख मांगनेमें मस्त हूं। मैं क्यों परेशान होऊं? छोटी सी जिंदगी मिली है, उसे मैं आनंद की खोज में क्यों गंवा दूं? अगर आनंद की खोज में भी जिन्दगी गंवाई जाती है, तो फिर मैं पूछना चाहता हूं कि कमाई किस बात में की जायेगी?

★

मित्र ! निद्रा से जागो !

(एक प्रवचन)

संकलन : अकलंक

मनुष्य एक यंत्र है। मनुष्य की चेतना जागी हुई नहीं है। मनुष्य एक सोती हुई आत्मा है। उसका सारा जीवन ही सोया हुआ जीवन है। लेकिन बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। बात यहां शुरु होती है। मनुष्य यंत्र है, तो यंत्र से ऊपर उठने की भी उसकी संभावना है। अगर अपनी यांत्रिक स्थिति उसे पूरी तरह स्पष्ट हो जाये तो स्पष्ट होने के साथ ही भीतर कोई शक्ति जगने लगेगी, जो उसे मनुष्य बना सकती है।

तो इस बात को ठीक से समझ लें, कि मनुष्य के सोये हुए होने से मेरा क्या अर्थ है?

मनुष्य यंत्र है—इस बात को कहने से मेरा क्या प्रयोजन है?

इस बात का एक ही अर्थ है, कि अभी हम जिसे जागरण समझते हैं वह जागरण नहीं है। वह स्वप्न देखने की ही एक दशा है।

रात आकाश में तारे भरे होते हैं। सुबह सूरज निकलता है, और हम सोचते होंगे कि सूरज निकलने के साथ तारे समाप्त हो गये, याकि तारे कहीं चले गये। लेकिन तारे न तो समाप्त होते हैं और न कहीं जाते हैं। वे सूरज की रोशनी में केवल छिप जाते हैं। अगर कोई बहुत गहरे कुंए के भीतर चला जाये, तो वहां उस अंधेरे में से आकाश के तारे दिन में भी दिखाई पड़ सकते हैं। क्योंकि तारे तो दिन में भी वहीं मौजूद होते हैं, जहां रात थे, लेकिन सूरज की रोशनी में छिप जाते हैं और दिखाई नहीं पड़ते।

रात हम स्वप्न देखते हैं। सुबह उठकर सोचते हैं। —स्वप्न समाप्त हो गये। लेकिन नहीं, स्वप्न हमारे भीतर चलते हैं। अगर थोड़ी देर, अपनी आंख बंद करके, भीतर जायें तो आप पायेंगे सपने वहां मौजूद हैं। वहां स्वप्न (Dreams) चल रहे हैं। किसी भी क्षण आंख बंद करें और भीतर देखें, और आप पायेंगे भीतर कोई स्वप्न चल रहा है। हो सकता है आप राष्ट्रपति बन गये हों अपने सपने में। हो सकता है आपने कोई बहुत बड़ा महल खड़ा कर लिया हो, या अपने दुश्मन की हत्या कर दी हो। लेकिन आंख बंद करके भीतर देखेंगे तो पायेंगे कि दिन में जागते हुए भी वहां कोई न कोई स्वप्न मौजूद है।

और ऐसे ही चित्त को, जिसमें स्वप्न मौजूद हैं, मैं सोया हुआ चित्त कहता हूँ। रात हम सपने देखते हैं और दिन में जाग कर भी सपने देखते हैं। एक ही फर्क पड़ता है। रात में आंखे बंद होती हैं। इसलिये सपना स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ता है क्योंकि बाहर की दुनिया हमारी आंखों में नहीं होती। दिन में सपना तो भीतर मौजूद होता है पर बाहर की दुनिया के कोलाहल में दब जाता है। वह मौजूद रहता है, मिटता नहीं है। जैसे सुबह सूरज की रोशनी में आकाश के तारे दब जाते हैं, मिटते नहीं है। सांझ होते ही, सूरज के बिदा होते ही, तारे चमकना शुरू हो जाते हैं। ऐसे ही दिन की रोशनी में बाहर की दुनिया के चित्र सामने खड़े हो जाते हैं और भीतर के सपने दब जाते हैं। वे मिटते नहीं हैं। आंख बंद करें और भीतर देखें। सपना वहां मौजूद होगा। सांझ होगी, बाहर की दुनिया से चित्त थक जायेगा। बाहर की दुनिया के चित्र हल्के पड़ने लगेंगे, और सपने स्पष्ट होने लगेंगे। वह तो चौबीस घंटे चल ही रहे हैं। उनकी एक अविच्छिन्न धारा है। उनका एक लगातार क्रम है। वह टूटता नहीं है। इसीलिये मैंने कहा कि मनुष्य सोया हुआ है। जो सपने देखता है वह सोया हुआ ही है। वह नींद में ही है।

जिस दिन चित्त सारे सपनों से मुक्त हो जाता है। भीतर कोई स्वप्न नहीं रह जाता। उसी दिन उस गहरी शांति में, उस शांत चित्त में सत्य का प्रतिबिम्ब बनना शुरू होता है। जैसे किसी झील में लहरें लय हो जायें, और झील बिलकुल शांत हो जाये, तो उसमें चांद और तारों के प्रतिबिम्ब बनने लगते हैं। ऐसे ही स्वप्न रहित शांत चित्त में परमात्मा की छवि उतरना शुरू होती है। उसका आलोक उतरना शुरू होता है। स्वप्न रहित, जाग्रत चित्त सत्य की और स्वयं की खोज का द्वार है। लेकिन हम सोये हुये हैं। और सोये हुये हम जो भी करेंगे, उससे सत्य के, स्वयं के या आनंद के निकट कभी नहीं पहुंच सकते हैं।

सोया हुआ आदमी चाहे कितना ही सोचे कि वह कहीं पहुंच गया है, लेकिन कहीं पहुंचता नहीं है। आपने हजारों बार रात सपने में देखा होगा कि आप काश्मीर पहुंच गये, हिमालय पहुंच गये या कहीं और पहुंच गये। और सुबह जागकर आपने पाया कि आप वहीं हैं, जहां आप सोये थे, कहीं पहुंचे नहीं है। सोया हुआ आदमी कहीं पहुंचता है? पहुंचने के सपने जरूर देखता है। और जिस दिन भी जागता है, जिस क्षण भी जागता है, पाता है कि वहीं खड़ा है जहां पर था। इसीलिये सोया हुआ आदमी केवल यात्रा के सपने देखता है लेकिन यात्रा कभी भी नहीं कर पाता। सोचता है यह बन जाऊं वह बन जाऊं लेकिन यह सब उसका सपना है। जिस दिन भी जागेगा तो वह पायेगा कि वह कुछ भी नहीं बना, वहीं के वहीं खडा है। सोया हुआ आदमी विचार करता है न मालुम क्या क्या हो जाने के, लेकिन कुछ हो नहीं पाता। मौत उसके सारे सपनों को तोड़ देती है। और वह पाता है कि मैं तो वहीं खड़ा हूं, जहां मैं था। जीवन की यही विफलता, दुख और विषाद बन जाती है। कहां, कहां पहुंचने का सोचते हैं और कहीं पहुंच नहीं पाते। पहूंचते भी हैं तो वहां, जहां कभी सोचा भी न था। सारी यात्रा मृत्यु में समाप्त होती है। जहां कोई कभी नहीं पहुंचना चाहता, अंततः हम वहीं पहुंच जाते हैं। जिन्दगीभर चलकर मौत में पहुंच जाते हैं। जिन्दगीभर दौड़कर मृत्यु में पहुंच जाते हैं। और मैं आपको निवेदन कर दूं, जो सोया हुआ है, वह सिवाय मृत्यु के और कहीं पहुंचेगा भी नहीं।

सोये हुये होने और मौत में कोई गहरा सम्बन्ध है। मौत असल में और गहरे रूप से सो जाने के सिवाय क्या है? जो जिन्दगी भर सोया रहा है वह मृत्यु की गहरी निद्रा में पहुंच ही जायेगा। लेकिन जो अपने भीतर जागना शुरू हो जाता है, उसके लिये मृत्यु मिट जाती है। सोया हुआ चित्त (Sleeping mind) मौत में पहुंचता है। जागा हुआ चित्त (Aware mind) वहां पहुंच जाता है, जहां अमृत है, जहां कोई मृत्यु नहीं है।

हम सब लोग सारी यात्रा करके कहां पहुंचते हैं? यह पूछ लेना जरूरी है, क्योंकि वह मंजिल बता देगी कि हम सोये हुये हैं या जागे हुये?

एक फकीर से किसी ने जाकर पूछा कि हमें मृत्यु और जीवन के सम्बंध में कुछ समझायें? उस फकीर ने कहा कहीं और जाओ! अगर केवल जीवन के सम्बंध में ही समझना हो तो मैं समझाऊं, लेकिन मौत के सम्बंध में समझना हो तो कहीं और जाओ। क्योंकि मौत को तो हम जानते ही नहीं कि कहां है!

हम तो केवल जीवन को जानते हैं।

जो जागता है वह केवल जीवन को जानता है। उसके लिये मौत जैसी कोई चीज रह ही नहीं जाती। और जो सोता है वह केवल मौत को ही जानता है। वह जीवन को कभी नहीं जान पाता।

सोया हुआ आदमी इन अर्थों में मरा हुआ आदमी है। उसे जीवन का केवल आभास है, कोई अनुभव नहीं। वह सोया हुआ है इसलिये वह एक जड़ यंत्र है, सचेत आत्मा नहीं। और इस सोये हुये होने में वह जो भी करेगा, वह मृत्यु के अलावा उसे कहीं नहीं ले जा सकता है। चाहे वह धन इकट्ठा करे, चाहे वह धर्म इकट्ठा करे। चाहे वह दुकान चलाये, और चाहे वह मंदिर जाये। चाहे वह यश कमाये और चाहे वह त्याग करें। उसका कुछ भी करना उसे मृत्यु के बाहर नहीं ले जा सकता है। एक कहानी मुझे बहुत प्रीतिकर है। वह मैं आपसे कहूं।

एक राजा ने रात सपना देखा। वह घबड़ा गया और उसकी नींद टूट गई। फिर तो उतनी रात उसने सारे महल को जगा दिया और सारी राजधानी में खबर पहुंचा दी कि मैंने एक सपना देखा है। जो लोग भी मेरे सपने का अर्थ कर सकें, उसकी व्याख्या कर सकें, वे शीघ्र चले आयें।

गांव में जो भी पंडित थे, विचारशील लोग थे, ज्ञानी थे, भागे हुये राजमहल आये। और उन्होंने राजा से पूछा कि कौन सा सपना आपने देखा है कि आधी रात को आपको हमारी जरूरत पड़ गई? उस राजा ने कहा "मैंने सपने में देखा है कि मौत मेरे कंधे पर हाथ रखकर खड़ी है और मुझसे कह रही है कि सांझ ठीक जगह पर और ठीक समय पर मुझे मिल जाना। मुझे तो कुछ समझमें नहीं आता कि इस सपने का क्या अर्थ है? तुम्हीं मुझे समझाओ।

वे लोग विचार में पड़ गये और सपने का अर्थ करने लगे—क्या होगा, इसकी सूचना क्या है? इसके लक्षण क्या हैं? और तभी महल के एक बूढ़े नौकर ने राजा को कहा: "इनके अर्थ और इनकी व्याख्यायें और इनके शास्त्र बहुत बड़े हैं। और सांझ जल्दी हो जायेगी। मौत ने कहा है, सांझ होते होते, सूरज ढ़लते ढ़लते मुझे ठीक जगह पर मिल जाना। मैं तुम्हे लेने आ रही हूं। तो उचित तो यह होगा कि आपके पास जो तेज से तेज घोड़ा हो, उसको लेकर इस महल से सांझ तक जितनी दूर हो सके निकल जायें। इस महल-में अब एक क्षण भी रुकना खतरनाक है। जितनी दूर जा सकें चले जायें। मौत से बचने का इसके सिवाय कोई रास्ता नहीं है। और अगर इन पंड़ितों की व्याख्या के लिये रुके रहे कि ये क्या अर्थ करेंगे? तो मैं आपसे कह देता हूं कि

ये पंडित तो आज तक किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे हैं, कोई निष्पत्ति और कोई समाधान पर नहीं पहुंचे हैं। हालांकि हजारों साल से विचार कर रहें हैं। जब ये अभी तक जीवन का ही कोई अर्थ नहीं निकाल पाये तो मौत का क्या अर्थ निकाल पायेंगे? सांझ बहुत जल्दी हो जायेगी इनका अर्थ न निकल पायेगा। आप भागें यही ठीक है। इस महल को जल्द से जल्द छोड़ दें यही उचित है।" राजा को बात समझ में आई। उसने अपना तेज से तेज घोड़ा बुलवाया और उस पर बैठ कर भागा।

दिन भर वह भागता रहा न उसने धूप देखी न छांव। न उस दिन उसे प्यास लगी न भूख। जितने दूर निकल सके उतने दूर निकल जाना था। मौत पीछे पड़ी थी। महल से जितना दूर हो जाये उतना ही अच्छा था। जितना मौत के पंजे से बाहर हो जाये उतना अच्छा था।

सांझ होते होते, वह सैकडों मील दूर निकल गया। सूरज ढल रहा था। उसने एक बगीचे में जाकर घोड़ा ठहराया। वह प्रसन्न था कि वह काफी दूर आ गया है। जब घोड़ा बांध ही रहा था तभी उसे अनुभव हुआ कि पीछे से किसी ने कंधे पर हाथ रख दिया है। उसने लौटकर देखा—वह घबड़ा गया! उसके सारे प्राण कंप गये! जो काली छाया रात सपने में उसे दिखाई पड़ी थी वही खड़ी थी। घबड़ा कर राजा ने पूछा: "तुम! तुम कौन हो?" उसने कहा मैं हूं तुम्हारी मृत्यु। क्या भूल गये—आज की रात ही तो मैंने तुम्हे स्मरण दिलाया था कि सांझ होने के पहले, सूरज ढलने के पहले, ठीक समय, ठीक जगह पर मुझे मिल जाना। मैं तो बहुत घबडाई हुई थी क्योंकि जहां तुम थे, वहां से इस वृक्ष के नीचे तक, ठीक समय पर आने में बहुत कठिनाई थी। लेकिन तुम्हारा घोड़ा बहुत तेज था और उसने तुम्हें ठीक समय, ठीक जगह पर पहुंचा दिया। मैं तुम्हारे घोड़े को धन्यवाद देती हूं। इस जगह तुम्हें मरना था और मैं चिन्तित थी कि सूरज ढलने तक तुम इस जगह तक आ भी पाओगे या नहीं।

दिन भर की दौड़ सांझ को मौत में ले गई। सोचा था बचने के लिये भाग रहा है। और उसे पता भी न था कि बचने के लिये नहीं भाग रहा था बल्कि जिससे बचना चाह रहा था प्रतिक्षण उसके ही निकट होता जाता था। उसे पता भी न था कि उसका उठाया हुआ प्रत्येक कदम उसे मौत के मुंह में ले जा रहा था।

हम सब भी अपने अपने घोड़े पर सवार हैं। और हम सब भी मौत के मुंह में चले जा रहे हैं। हम जो भी करेंगे, वह शायद हमें उस ठीक जगह पहुंचा

देगा जहां मौत हमारी प्रतीक्षा कर रही है। और हम जिस रास्ते पर भी चलेंगे, वह हमें मौत के अतिरिक्त कहीं नहीं ले जायेगा। आज तक यही होता रहा है।

सोया हुआ आदमी जो कुछ भी करेगा वह मृत्यु में ले जाता है। सोने का अंतिम परिणाम मौत ही हो सकती है। लेकिन सोना आदमी की नियति नहीं है। यह जरूरी नहीं है कि कोई सोया ही रहे। जागा भी जा सकता है। जो सोया है, वह जाग भी सकता है। पीछे लोग जागे हैं। आज भी जाग सकते हैं। जागने का भी मार्ग है रास्ता है, द्वार है। अभी तो हम नींद में जो भी करेंगे उससे कुछ भी होने को नहीं है। हमारी पूजा और हमारी प्रार्थना कुछ भी न करेगी। नींद बुनियादी रूप से पहले चरण की तरह टूट जानी चाहिए तभी कुछ हो सकता है। वह नींद कैसे टूटे, कैसे भीतर चेतना होश और जागरण से भर जाये, कैसे भीतर बोध का दिया जल जाये, उसके ही सूत्रों पर बात करूंगा। लेकिन उसके पहले बुनियादी रूप से यह समझ लें कि सोये हुये कुछ भी नहीं हो सकता।

एक घटना मुझे स्मरण आती है। एक फलों की दुकान के पास एक भिखारी खड़ा हुआ था। दोपहर हो गई थी और दुकान का मालिक अपने घर भोजन करने को जाना चाहता था। उसने एक लोमड़ी पाल रखी थी। जब वह भोजन के लिए जाता तो वह लोमड़ी उसकी दुकान के बाहर बैठकर पहरा दिया करती थी। तो मालिक ने लोमड़ी को कहा कि तू बाहर आ और द्वार पर बैठ! आसपास कोई भी आदमी आये तो ख्याल रखना कि वह कोई ऐसा काम तो तो नहीं कर रहा है। जिससे दुकान को नुकसान पहुंचने की संभावना हो। अगर वह ऐसा कुछ काम करता हुआ दिखाई पड़े तो सचेत हो जाना और आवाज देना। देख लोमड़िया कुत्तों से भी ज्यादा होशियार होती है। इसीलिये मैंने तुझे पाला है और तेरे ऊपर यह जिम्मा छोड़ा है।

उस लोमड़ी से जब यह कहा गया तो वह बाहर आ कर बैठ गई। मालिक भोजन करने चला गया। वह भिखारी जो पास में ही खड़ा हुआ था, उनकी बातें सुन रहा था। लोमड़ी से कही गई सारी बातें उसने सुनी थीं। वह चुपचाप जहां बैठा हुआ या वहीं लेट गया। उसने आंख भी बंद करलीं। लोमड़ी ने सोचा: "सो जाना तो कोई क्रिया नहीं है! यह तो सो रहा है। यह कुछ कर तो रहा नहीं है। तो इसके सोने से तो दुकान को कोई खतरा नहीं है। क्योंकि वह कुछ करता तो खतरा हो भी सकता था। लेकिन यह तो कुछ भी नहीं कर रहा है। सो रहा है। और सोना कुछ करना नहीं है।

उसका यह तर्क बड़ा ही उचित था क्योंकि सोना तो कोई क्रिया नहीं है। भिखारी कुछ कर तो नहीं रहा था जिससे दुकान को खतरा होता। वह तो सिर्फ सो रहा था।

लेकिन उसे सोते देखकर लोमड़ी को भी नींद आने लगी। नींद बड़ी संक्रामक बीमारी है। अगर आपके पास दो चार लोग सोने लगें तो आपका जागना बहुत मुश्किल हो जायेगा। आप भी सो जायेंगे। लोमड़ी को भी नींद आने लगी। और फिर कोई खतरा भी न था वह निश्चिन्त होकर सो सकती थी। एक आदमी था जिससे कोई खतरा हो सकता था लेकिन वह भी सो गया था। तो लोमड़ी भी सो गई।

लोमड़ी के सोते ही वह आदमी उठा। दुकान के भीतर गया और जो उसे चुराना था चुरा लिया। लोमड़ी को क्या पता था कि सोते हुये लोग भी कुछ करते हैं। वह भोली भाली थी उसे आदमियों का कोई अंदाज न था कि आदमी बहुत खतरनाक है। और सोते हुये आदमी से भी डर है और खतरा है। जबकि सच तो यह है कि सोते हुये आदमी से ही असली डर है। सोया हुआ आदमी ही चोरी कर सकता है। सोया हुआ आदमी ही असत्य बोल सकता है। सोया हुआ आदमी ही बेइमानी कर सकता है और हिंसा कर सकता है। सोया हुआ आदमी ही यह सब कर सकता है, यह उस लोमड़ी को पता न था। उसने तो समझा कि सोना कोई काम थोड़े ही है। जो सो गया सो, सो गया उससे क्या डर। बेचारी भोली भाली थी। उसे जानवरों की आदत का पता होगा पर आदमियों का कोई पता न था। आदमी तो वैसे ही बड़े खतरनाक हैं। और फिर सोता हुआ आदमी तो बहुत ही खतरनाक है। क्योंकि सोया हुआ आदमी कुछ न कुछ करेगा। और नींद में वह जो भी करेगा वह खतरनाक ही होगा। वह चोरी होगी, हिंसा होगी, झूठ होगा।

तो वह भिखारी चोरी करके भाग गया। जब मालिक वापस आया तो उसने देखा कि चोरी हो गई है। लोमड़ी घबड़ाई हुई बैठी है। उसने लोमड़ी से पूछा कि क्या हुआ? लेकिन वह क्या बताती वह तो खुद ही सो गई थी।

मालिक बाहर भागा। और थोड़ी ही दूर पर, उसने उस भिखारी को छिपे हुये, एक वृक्ष के पीछे, फल खाते हुये देखा। वह उसके पास गया और उसने पूछा "मेरे मित्र! तुमने चोरी की वह तो ठीक, लेकिन क्या मैं पूछ सकता हूं कि तुमने चोरी कैसे की? उस भिखारी ने कहा "बहुत आसान था चोरी करना। लोमड़ी को मैंने सोने का धोखा दिया। मैं आंख बंद करके लेट गया

और लोमड़ी धोखे में आ गई। उसने शायद सोचा होगा कि सोया हुआ आदमी क्या कर सकता है? लेकिन मैं तुम्हे बता दूं, आज तक दुनिया में जो कुछ भी किया है वह सोये आदमी ने ही किया है। इसीलिये दुनिया इतनी बदतर है। तुम्हारी लोमड़ी धोखे में आ गई थी लेकिन तुम धोखे में मत आना। अगर लोमड़ी मेरे सोने के धोखे में न आती तो मैं चोरी न कर पाता।"

मैंने यह कहानी सुनी और यह मुझे बड़ी हैरानी लगी। और बड़ी सचाई से भरी हुई भी। अभी हम जो भी कर रहे हैं उससे जीवन में दुख फलित होता है। उससे जीवन में हिंसा, चोरी और अनाचार फलित होता है। शायद हमें इस बात का पता भी नहीं है। और शायद इस बात का हमें कोई ख्याल भी नहीं है कि ये सारी बातें हमारे सोने से पैदा होती है। हम नींद में हैं। हमारी चेतना सोई हुई है। और सोई हुई स्थिति में अगर हम चाहें कि इन सारी क्रियाओं को बदल दें तो यह असंभव है। यह बिलकुल ही असंभव है। इसे दो टूक ठीक से समझ लें। इसे बहुत स्पष्ट रूप से समझ लें कि सोई हुई स्थिति में कोई परिवर्तन मनुष्य के जीवन में संभव नहीं है। और अगर कोई परिवर्तन को अपने ऊपर थोप भी लेगा तो वह झूठ होगा और पाखंड होगा। उसके प्राणों में कोई क्रांति नहीं होगी। भीतर वह वही का वही आदमी रहेगा। सोई हुई चेतना ऊपर उठने में असमर्थ है। सोई हुई चेतना सत्य को जानने में और जीवन को जानने में असमर्थ है। तब कैसे इसे जगायें? क्या करें? लोग कहते हैं कि अगर आत्मा को जानना है तो आत्मा को मानना पड़ेगा। मैं यह नहीं कहता। सोया हुआ आदमी क्या मान सकता है? उसके मानने का मूल्य कितना है? उसके मानने का अर्थ कितना है? उसके विश्वास का कितना मतलब है? इसीलिये मैं नहीं कहता कि आत्मा को मानना पड़ेगा। मैं कहता हूं कि स्वयं को जागना पड़ेगा। और जो जागता है वह पाता है कि आत्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। लेकिन यह जागरण कहां से शुरू हो?

लोग आपसे कहेंगे कि भीतर झांकें। लेकिन मैं आपसे कहता हूं—जो बाहर झांकने में भी समर्थ नहीं है वह भीतर कैसे झांक सकेगा? इसलिये जागरण का पहला चरण है—बाहर जो जगत फैला हुआ है उसके प्रति जागरण। वहीं से शुरुआत हो सकती है। जो बाहर के प्रति जागता है, वह धीरे धीरे भीतर के प्रति भी जागना शुरु हो जाता है। क्यों? क्योंकि बाहर और भीतर दो चीजें नहीं हैं— वे एक ही चीज के दो छोर हैं। जो बाहर के प्रति जागना शुरु करेगा, धीरे धीरे उसका जागरण भीतर गहरे में भी प्रवेश करता चला जायेगा। इसलिये

जागरण का पहला सूत्र है---जो हमारे चारों तरफ फैला हुआ जगत है, उसके प्रति जागरण।

आप कहेंगे उसके प्रति तो हम जागे हुए ही हैं। लेकिन मैं आपको कहूं, उसके प्रति भी हम जागे हुये नहीं है। जो वृक्ष आपके द्वार पर लगा है, उसको कभी आपने सजग होकर देखा है? उसको कभी आपने आंख भरकर देखा है? कभी आप उसके पास दो क्षण रुके हैं? जो पत्नी आपके घर में इतने वर्षों से आपकी सेवा करती आई है, कभी उसकी आंखों में झांका है? कभी देखा है? कभी दो क्षण उसके प्रति होश से भरे हैं? वह बच्चा जो आपके घर में पैदा हुआ है, कभी उसके पास दो क्षण बैठकर आपने उसका निरीक्षण किया है? नहीं, बिलकुल भी नहीं। चारों तरफ हमारे जो जिन्दगी फैली हुई है, उसके प्रति हम बिलकुल सोये हुए से चलते हैं।

लेकिन यह पता कैसे लगेगा? यह पता तो भी चल सकता है, जब कभी आपकी जिन्दगी में कोई खतरे आये हों। कभी रास्ते में अचानक किसी आदमी ने आपके ऊपर छुरा उठा लिया हो। या कभी आप किसी गड्ढे के ऊपर से गुजरे हों जहां गिरने और मर जाने का भय हो। अगर अभी कोई आपकी छाती पर छुरा लेकर खड़ा हो जाये तो आपको पहली दफा पता चलेगा कि आप अब तक सोये हुये रहे हैं। उस खतरे में शायद एक क्षण को जाग जांए और देखें कि क्या होता है? लेकिन साधारणत: तो हम सोये सोये ही चलते हैं। जिन्दगी में दो चार मौके आते हैं जब जीवन खतरे में होता है। और तब एक जागरण एक क्षण को भीतर पैदा होता है। पश्चात् हम फिर सो जाते हैं। ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसे जीवन में ऐसे मौके न आये हों कि जब कुछ क्षणों के लिये उसने जागरण का अनुभव न किया हो।

कभी आपने अपने घर के बाहर चलती हुई सड़क को गौर से देखा है? अगर आप गौर से देंखे तो आप पायेंगे कि लोग सोये हुये चले जा रहे हैं। वे सडक पर चल रहे हैं। लेकिन उनका मन कहीं और चल रहा है। आप लोगों की आंखे, चेहरे और कदम देख कर समझ सकेंगे कि जैसे वे नींद में चले जा रहे हों। उन्हें चारों तरफ का कोई पता नहीं है। चारों तरफ की एक हल्की सी झलक है, जिसकी वजह से वे कामचलाऊ रूप से चल लेते हैं। रास्तों पर से निकल जाते हैं, और लोगों से टकराते नहीं। लेकिन चारों तरफ क्या हो रहा है इसका कोई स्पष्ट बोध उन्हें नहीं है।

आप कहीं बैठे हैं और कोई आपको खबर दे कि आपके मकान में आग

लग गई है तो आप वहां से उठेंगे और अपने घर की तरफ भागेंगे। तब क्या आपको रास्ते में चलते हुए लोग दिखाई पड़ेंगे? क्या आपको कोई नमस्कार करेगा तो सुनाई पड़ेगा? सुनाई तो जरूर पड़ेगा क्योंकि कान हैं तो सुनेंगे और दिखाई भी पड़ेगा क्योंकि आंखें है तो दिखाई भी देगा। लेकिन मैं आपको पूंछूं कि रास्ते में किन लोगों ने नमस्कार किया था? कौन लोग दिखाई पड़े थे? तो आप कहेंगे "मुझे कोई होश न था। मेरे मकान में आग लगी थी। कान सुनते थे। आंख देखती थी। लेकिन भीतर कोई होश न था।" रास्ते से आप गुजर भी गये बिना टकराये, बिना किसी से उलझे। आप अपने घर भी पहुंच गये लेकिन आपको कुछ भी पता नहीं है कि रास्ते में क्या हुआ? तो मैं कहुंगा कि रास्ते पर आप सोये हुये निकले। वैसे तो अभी भी हम रोज सोये हुये ही निकल रहे हैं, नींद की मात्रा भर का भेद है। हमें कुछ पता नहीं है कि चारों तरफ क्या फैला है। जिन्दगी एक यंत्र की भांति चलती जाती है।

जीवन जो चारों तरफ फैला है, वह तो बहुत दूर की बात है। जो हमारे बहुत निकट खड़ा हुआ जीवन है, उसके प्रति भी हम होश से भरे हुये नहीं हैं। और जब तक हम इस बाहर की रेखा पर होश से भरे हुये न हों, तब तक होश भीतर भी नहीं ले जाया जा सकता।

अंधी हैलन केलर को किसी ने पूछा कि तुम्हें जिन्दगी में सबसे बड़े चमत्कार की, सबसे बड़े रहस्य की बात क्या अनुभव हुई? हैलन केलर ने कहा "एक बड़ी अद्भुत बात मैंने अनुभव की कि लोगों के पास आंखें हैं लेकिन शायद ही कोई उनसे देखता हो! लोगों के पास कान हैं लेकिन शायद ही कोई उनसे सुनता हो और लोगों के पास हृदय है लेकिन शायद ही कोई उससे अनुभव करता हो!

और निश्चित ही हमने अपने जीवन के वे सारे द्वार, जिनसे बाहर का जीवन संस्पर्शित होता है और अनुभव होता है, बंद कर रखे हैं। जीवन की कोई खबर हमारे भीतर नहीं आ पाती। अगर ये द्वार खुले हों और जीवन की खबर भीतर आना शुरू हो जाये तो हम एक दूसरे ही मनुष्य के रूप में परिवर्तित होने लगेंगे। अगर कोई व्यक्ति अपने घर के द्वार पर खड़े हुये वृक्षों को भी संपूर्ण सजग दृष्टि से देख ले तो उसके जीवन में कुछ और ही बात शुरू हो जायेगी। लेकिन नहीं, यह हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हमारी आंखों पर जैसे नींद का एक परदा है। और उस परदे के पार कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हम जहां है, वस्तुतः वहां हमारा मन मौजूद ही नहीं है। हमारा मन हर क्षण

कहीं और है। इसीलिये हम हर जगह सोये हुये हैं। जब हम भोजन कर रहे हैं तब मन दफ्तर में है। और जब हम दफ्तर में हैं तो मन भोजन करता है। जहां हम हैं वहां हमारा मन नही है। और नींद का यही लक्षण है कि हम जहां हैं, वहां मन न हो।

बाहर के प्रति हमारी ग्राहकता और संवेदनशीलता भी न के बराबर है। हमें बाहर की घटनायें छूती ही नहीं हैं। न बाहर का सौन्दर्य हमें छूता है, न बाहर की कुरुपता हमें छूती है। न बाहर का आनंद हमें छूता है, न बाहर का दुख हमें छूता है। न आकाश, न नदियां, न तारे, न पहाड़ हमें कुछ भी नहीं छूता। हम उन सबके पास से अंधे और बहरे की तरह गुजर जाते हैं। हमें कुछ दिखाई ही नहीं पड़ता कि यह क्या हो रहा है। काश! हमें दिखाई पड़ सके! तो शायद हमारा जीवन दूसरा हो जाये।

बाहर के प्रति जागने के लिये जरूरी है कि अचानक, आकस्मिक रूप से कभी भी दो क्षण के लिये ठहर जायें, और बाहर की दुनिया को देखें कि यह क्या है? तो शायद आपको भीतर एक लहर दौड़ती हुई मालूम पड़े और लगे कि कोई चीज जो सोई थी वह उठ गई है। रास्ते पर चलते चलते अचानक रूक जायें और दो क्षण खाली आंख घुमाकर देखें। इस अचानक रुकने से भीतर चलते हुये सपने एक क्षण को ठहर जायेंगे। और तब आप देख सकेंगे कि यह क्या हो रहा है?-

कभी किसी वृक्ष के पास से निकलते हुये एकदम से एक जायें! आंखे उठायें और वृक्ष को देखें! कभी रात छत पर निकल आयें! आंखें उठायें और आकाश को देखें! सिर्फ देखें और कुछ भी न करें! इस अचानक रूकने से, इस झटका लगने से, भीतर फर्क पड़ना शुरु होगा।

जो मैं कह रहा हूं, सैकड़ों प्रयोगों के आधार पर कह रहा हूं। उसे कर-के देखें; कभी भोजन करते वक्त एक क्षण को रुक जायें और ख्याल करें कि :मैं देखूं कि क्या हो रहा है? तो आप पायेंगे कि भीतर जैसे कोई चीज जागी है। एक क्षण को झलक आयेगी और चली जायेगी लेकिन यह झलक दो बातें साफकर देगी। एक तो यह कि हम सोये हुये है। और दूसरी बात यह कि वह जागरण क्या है; उसका बोध भी हो जायेगा।

एक छोटे से गांव में मैं बहुत दिन तक था। उस गांव की नदी के पास छोटी सी पहाड़ी थी। उस पहाड़ी पर इतनी खड़ी और संकरी कगार थी कि उस पर अगर किसी को चलाया जाये तो गिरने के और मर जाने के बहुत

बहुत मौके थे। जब भी कोई मुझसे पूछता यह जागरूकता क्या है, जिसकी आप बातें करते हैं? तो मैं उससे कहता कि आओ मेरे साथ नदी पर चलो! और मैं उसे उस पहाड़ी की कगार पर ले जाता। खुद आगे चलता और उससे कहता, मेरे पीछे आओ! वह कगार इतनी संकरी थी कि एक पैर भी चूक जाये तो नीचे कोई २०० फुट गहरे गड्ढे में गिरना पड़े।

जब दुसरा व्यक्ति आता तो उसे एक एक कदम संभाल कर रखना पड़ता। एक एक श्वांस संभाल कर लेनी पड़ती। वहां सोये हुये नहीं चला जा सकता था। कगार पार करने के बाद में पूछता "क्या कोई फर्क अनुभव हुआ? क्या तुम्हें यह अनुभव हुआ कि जब तक तुम उस कगार को पार कर रहे थे, तब तक, तुम्हारे भीतर न तो कोई विचार उठा, न कोई सपना चला। क्या तुम्हे पता चला कि तुम जागे हुये थे और सावधान थे। "और वह मुझसे कहता कि इसका मुझे स्पष्ट पता चला। अनुभव हुआ कि जैसे मैं बिलकुल और ही तरह से चल रहा हूं, जैसा कि पहले कभी नहीं चला। एक एक कदम होश से भरा हुआ था। हृदय की धड़कन और श्वांस भी मुझे सुनाई पड़ती थी। सब तरफ से मैं जागा हुआ था क्योंकि एक पैर का चूकना भी मौत में ले जाता। मौत सामने थी।

तो कभी क्षण भर को एकदम रुक जायें अचानक। रास्ते पर चलते हुये, भोजन करते हुये, बिस्तर पर लेटते हुये, सीढ़ियां चढते हुये, दिन में दो चार बार अचानक रुक जायें। एक सेकेन्ड को रुक जायें और चारों तरफ देखें कि क्या है? आपको भीतर एक फर्क मालुम पड़ेगा जैसे नींद क्षण भर को टूटी हो। एक अंतराल पैदा होगा। और उस अंतराल में आनंद की अनुभूति होगी। क्योंकि उस जागे हुये क्षण में न दुख है, न अशांति। अगर यह क्षण निरंतर अनुभव में आता चला जाये तो आपके जागने की क्षमता बढ़ती चली जायेगी। दो ही बातें जरूरी हैं। एक तो कभी कभी ठहर कर जाग लेना और दूसरी बात जीवन के प्रति निरंतर निरीक्षण (Observation) का भाव रखना।

एक वृद्ध वैज्ञानिक अपने बच्चों को समझा रहा था कि निरीक्षण क्या है। उसके बच्चों ने पूछा कि विज्ञान की खोज में सबसे बड़ी बात क्या है? उस वृद्ध वैज्ञानिक ने कहा "दो ही बातें जरूरी हैं। एक तो साहस (Courage) और दूसरा निरीक्षण (Observation)" उन बच्चों ने कहा कि हमें ठीक से समझा दें। तो उस वृद्ध वैज्ञानिक ने एक प्याली में नमक का बहुत कड़ुआ, बहुत बेस्वाद घोल बनाया। और बच्चों से कहा. "यह नमक का घोल है। बहुत कड़ुआ और

बहुत बेस्वाद है। इसे जीभ पर रखोगे तो सारा मुंह तिक्त और कड़ुआ हो जायेगा। हो सकता है उल्टी हो जाये लेकिन इसकी जांच करना है, इसे पहचानना है। तो मैं अपनी अंगुली इसमें डुबाऊंगा और उसे जीभ पर रखकर चखूंगा। तुम ठीक से निरीक्षण करते रहना कि किस भांति मैं यह कर रहा हूं। तुम्हें भी फिर अपनी अंगुली डुबानी होगी और जीभ पर रखना होगा। ठीक से निरीक्षण करना ताकि तुम भी वैसा ही कर सको जैसा मैंने किया है।"

उन बच्चों ने गौर से देखा। वे टकटकी लगाये देखते रहे। निरीक्षण करना जरूरी था! क्योंकि उनको भी वैसा ही करना था। उन्होंने देखा कि बूढ़े ने घोल में अपनी अंगुली डुबाई और फिर अंगुली को जीभ पर रखा। लेकिन जैसी अपेक्षा थी वैसा कुछ भी नहीं हुआ। न उसके चेहरे पर परेशानी के कोई भाव आये, न उसे उल्टी हुई। इसके बाद वह प्याली सब बच्चों के बीच घुमाई गई। हर बच्चे ने उसमें अपनी अंगुली डुबाई और जीभ पर रखी। लेकिन रखते ही जैसे जहर मुंह में पहुंच गया हो। वे सारे बच्चे थूंकने लगे और कुछ को तो उल्टी भी हो गई। वे सब घबरा गये और उनकी आंखों में आंसु भर आये।

जब वे सारे बच्चे प्रयोग कर चुके तो वृद्ध वैज्ञानिक ने कहा "मेरे बच्चो! जहां तक साहस का सवाल है, तुम सब पूरे अंक पाने में सफल हो गये। तुम सब साहसी हो। लेकिन जहां तक निरीक्षण का सवाल है, तुम सब असफल हो गये। मैंने जो अंगुली घोल में डुबाई थी, वही जीभ पर नहीं रखी, यह तुम में से किसी ने भी नहीं देखा। तुमने साहस तो दिखाया लेकिन निरीक्षण तुम नहीं कर पाये।"

जो उस वृद्ध वैज्ञानिक ने उन बच्चों को विज्ञान के संबंध में समझाया था, वही मैं आपको जीवन के संबंध में कहना चाहता हूं। हम में से बहुत से लोग साहस तो कर पाते हैं, लेकिन निरीक्षण नहीं कर पाते। और बिना निरीक्षण के साहस खतरनाक है। सोया हुआ आदमी साहसी हो जाये तो बहुत खतरा है। उससे दुनिया में सिवाय बुराई के और कुछ भी नहीं हो सकता। हम सबने दुनिया में साहस तो बहुत किया है, किन्तु निरीक्षण बिलकुल भी नहीं।

निरीक्षण से ही हमें अपनी यांत्रिकता का पता चल सकता है। और यह पता चल जाये तो यांत्रिकता का घेरा टूटना शुरू होता है। क्योंकि साथ ही यह भी बोध में आना शुरू होता है कि मैं यांत्रिकता के बीच हूं, लेकिन स्वयं यंत्र नहीं हूं। और अगर यह अहसास हो जाये कि सारी यांत्रिकता के बीच मेरी चेतना (Consciousness) अलग ही है, तो फिर कुछ हो सकता

है। तभी मैं इस यंत्र के साथ कुछ कर सकता हूं। क्योंकि तब मैं इससे अलग हूं और इससे बाहर हूं। किसी चीज को जानते ही हम उससे अलग हो जाते हैं। देखने वाला देखे गये से अलग हो जाता है। तो इस निरीक्षण से आपको अपने ही ऊपर स्वामित्व प्राप्त होगा। और चारों तरफ फैले जीवन और उसकी क्रियाओं का बोध होना शुरु होगा। यह हो सके तभी आप ठीक अर्थों में एक जागे हुए मनुष्य हो सकते हैं, उसके पहले नहीं। और यह हो जाये तो जीवन से सारी चिन्ता, अशांति और पीड़ा विलीन हो जायेगी, क्योंकि वह सोये हुए होने के कारण ही है। यंत्र से ऊपर उठते ही जीवन में परमात्मा, शांति, सत्य और सौन्दर्य का जन्म हो जाता है।

★

समाचार विभाग :

धर्म चक्र प्रवर्तन :

आचार्य श्री के देशव्यापी कार्यक्रम :

"जीवन है प्रेम, जीवन है करुणा, जीवन है मैत्री और उपेक्षा की साधना"

नारगोल साधना शिविर में जीवन और साधना पर उद्‌बोधनः

सूरत के निकट बलसार जिले में गुजरात राज्य में सरु वन और समुद्र की नैसर्गिक आभा से युक्त साधना स्थली नारगोल में आचार्य श्री के सान्निध्य में जीवन जागृति केन्द्र बंबई की ओर से १, २ तथा ३ नवम्बर को एक बृहत्त साधना शिविर आयोजित हुआ। शिविर में बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब, मध्यप्रदेश, बंगाल, दिल्ली तथा महाराष्ट्र और गुजरात प्रदेश के हजारों साधकों ने भाग लिया। यह अपने ढंग का पहला साधना शिविर था जिसमें इतनी बडी संख्या में जिज्ञासु तथा प्रेमी साधकों ने आचार्यश्री की अमृतवाणी का श्रवण किया और जीवन की अंतरंग साधना पद्धति से परिचित हुये। आचार्यश्री ने अपने तीन दिवस के बहुमूल्य सान्निध्य में सुबह तथा रात्रि के प्रवचनों में प्रेम, करुणा, मैत्री तथा उपेक्षा पर जो दिव्य संदेश दिया उसका वर्णन शब्दों की सीमा में नहीं किया जा सकता, उनकी वाणी शब्दों के पार है और उनसे जो झलकता है उसमें परमात्मा की सुवास है। लगता है एक बार जो सुनना प्रारंभ हुआ तो वह समय की परिधि के पार सुनते ही चला जाया जाये। यही कारण है कि आचार्यश्री को देश के कौने कौने में सुननेवालों को जब जब भी सुनने का मौका आता है तब तब सुनकर सुनने की लालसा और तीव्र होती चली जाती है। आचार्यश्री ने यहां कहा: "जीवन तो सतत एक साधना है। प्रत्येक साधक को शरीर और मन से साधना प्रारंभ करनी होती है। शरीर और मन

को जो पूरे प्रेम से अंगीकार करता है, वही अपनी आत्मा की ऊंचाईयों तक भी उठता है। शरीर और मन आत्मा तक ले जाने के साधन हैं। उनसे प्रेम साधकर ही आत्मा को जाना जाता है। इस तरह प्रेम से जो उपलब्ध होता है उसको करुणा और मैत्री के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। करुणा और मैत्री प्रेम के प्रकाशन के द्वार हैं।'

★

"मृत्यु है जीवन का एक तथ्य, केवल शब्द ही नहीं।"

बंबई में जीवन और मृत्यु पर प्रवचन :

आचार्यश्री के जीवन के अंतर्तम रहस्यों को जानने की अभीप्सा पूरे मुल्क के प्राणों में जागी है। आचार्यश्री ने जीवन के रहस्यों को जानने की दिशा में अभिनव वैज्ञानिक प्रयोग किये हैं। और यही कारण है कि आचार्यश्री जीवन में वैज्ञानिक जीवन दृष्टिकोण का व्यापक प्रयोग करते हैं तथा जन जीवन को भी वैज्ञानिक आधारों पर जीवन विकसित करने की दिशा देते हैं। जीवन और मृत्यु पर बंबई में ४ नवम्बर की संध्या तथा ५ नवम्बर की सुबह जो प्रवचन आयोजित हुये उनमें आचार्यश्री ने कहा: "जीवन में मृत्यु एक अनिवार्य चरण है। लेकिन मृत्यु शब्द कहकर नहीं जानना है। वरन् मृत्यु से परिचित होना है। उसको भी जानना है। और जो जीवन के बीच मृत्यु के अज्ञात तत्व की खोज नहीं कर लेता है, वह कभी भी अभय को उपलब्ध नहीं हो पाता है। इससे जीवन के बीच ही जो मृत्यु की अज्ञात यात्रा छिपी है, जबतक इसे कोई साधक ध्यान के गहराईयों के प्रयोग से जान ही न ले तबतक जीवन में कोई सार्थकता उपलब्ध नहीं होती है।"

★

"मार्क्स हैं जीवन की प्राथमिक सीढ़ी बुद्ध हैं जीवन की अंतिम सीढ़ी :

जीवन जागृति केन्द्र जबलपुर में :

जबलपुर नगर के जीवन जागृति केन्द्र में आचार्यश्री का मार्ग निर्देशन प्रति माह प्राप्त होता है जन सभा के माध्यम से। केन्द्र की ९ नवम्बर की मासिक जन-सभा में अपने प्रखर चिन्तन से प्रभावित विषय : कार्ल मार्क्स और बुद्ध पर बोलते हुये आचार्यश्री ने कहा: "जब तक भारत में मार्क्स का समाज निर्मित नहीं होता तब

तक बुद्ध का समाज भी निर्मित नहीं हो सकता है। पहले चाहिये आर्थिक तल पर समाज को उन्नत जीवन व्यवस्था, बाद में समाज को चाहिये आध्यात्मिक जीवन तल पर विकास। इस दृष्टि से मार्क्स भी अधूरे हैं और बुद्ध भी। दोनों की जीवन दृष्टियां समाज को उपयोगी हो सकती हैं, लेकिन पहले मार्क्स की होगी बाद में बुद्ध की।"

★

सामाजिक क्रांति के लिये वैचारिक क्रांति अनिवार्य चरण"

जीवन जागृति केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को संबोधन :

आचार्यश्री का निकट सामीप्य जीवन जागृति केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं को समय समय पर प्राप्त होता रहता है। जिसमें कार्यकर्ताओं को आचार्यश्री भावी दिशा निर्देश करते हैं। १२ नवम्बर को जबलपुर केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं की जो गोष्ठी आचार्य श्री के निवास स्थान पर हुई, उसमें आचार्यश्री ने कहा: "विचार बडी शक्ति है। विचार का समाज के जीवन में बहुत मूल्य है। इससे पहले वैचारिक क्रांति सामाजिक क्रांति लाने के पूर्व आवश्यक है। कोई भी समाज बिना विचार के परिवर्तित नहीं होता है। इससे जितनी तीव्रता से वैज्ञानिक जीवन दृष्टिकोण के विचार जनमानस तक पहुंचाये जायें उतनी ही तीव्रता से सामाजिक परिवर्तन संभव होता है।"

★

"जो बीत गया है, उसे बीत ही जाने दो. मृत स्मृति के बोझ के जाते ही वह पाया जाता है.....जो सत्य है, शिव है, सुन्दर है।"

दिल्ली में त्रिदिवसीय विराट सत्संग :

दिल्ली नगर में लाला लाजपतराय भवन में १५, १६ तथा १७ नवम्बर को पूज्य आचार्यश्री का त्रिदिवसीय सत्संग आयोजित किया गया। सत्संग का क्रांतिकारी प्रभाव दिल्ली के प्रबुद्ध नागरिकों तथा प्रेमी साधकों पर पडा। उन्होंने यहां कहा: "मित्रो! मैं क्या छोडने को कहता हूं? मैं एक ही बात छोडने को कहता हूं और वह है मृत अतीत का बोझ. जो बीत गया है उसे बीत ही जाने दो। वह तुम्हारी चेतना पर धूल न बने। वह तुम्हारी चेतना के दर्पण को न ढंक ले। क्योंकि चेतना के निर्मल और निर्धूलि दर्पण में ही वह सब जाना जाता है

जो कि सत्य है, शिव है, सुन्दर है। और हमारे चित्त के दर्पण तो पत्थर के हो गये हैं .....अतीत ने, मृत ने, परम्पराओं ने, शास्त्रों ने, सिद्धांतों ने सभी ने उनपर धूल की इतनी पर्तें जमा दी हैं कि उन दर्पणों में जीवन का अब कोई भी प्रतिबिम्ब नहीं बनता है। मैं धूल की इन सारी पर्तों को ही पोंछ डालने का आवाहन देने आया हूं। क्योंकि उन्हें पोंछ डालते ही तुम पाओगे कि तुम सदा से ही प्रभु के समक्ष खडे हो...केवल तुम्हारे दर्पण का अंधापन होने से ही उससे तुम्हारी दूरी है। आचार्यश्री के ये क्रांतिकारी उद्‌गार विद्युत की भांति दूर दूर तक फैल गये। और त्रिदिवसीय सत्संग में हजारों की संख्या में नागरिकों ने उपस्थित होकर अमृतवाणी का श्रवण किया।"

★

"जीवन को प्रेम करो.....जीवन को उसकी समस्त गहराईयों में जिओ... क्योंकि जीवन के मंदिर में ही परमात्मा का आवास है।"

दिल्ली में महाविद्यालयीन प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों के बीच :

आज सारे मुल्क में शिक्षित युवा वर्ग को आचार्यश्री के प्रति जो अनुराग है, वह अन्यत्र शायद ही देखने को मिलता है। इससे स्थान स्थान पर शिक्षित युवा पीढी आचार्यश्री को सुनकर अपने जीवन निर्माण की ओर अग्रसर होती है। दिल्ली में १८ नवम्बर की सुबह एक विशाल महाविद्यालयीन प्राध्यापकों तथा विद्यार्थियों की सभा को उद्‌बोधित करते हुये आचार्यश्री ने कहा: "जीवन से लडो मत। शत्रुता की दृष्टि सम्यक् नहीं है। मैत्री के प्रकाश में ही जीवन के रहस्य उद्‌घाटित होते हैं। सर्वप्रथम चाहिये जीवन की पूर्ण स्वीकृति. जीवन के प्रति सद्‌भाव. लेकिन हजारों वर्षों की जीवन विरोधी शिक्षाओं ने मनुष्य से यह भाव ही छीन लिया है। और इस भाव के अभाव में हम जीवन को जानने से वंचित रह जाते हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। जीवन तो साथ है.....प्रति-पल हम उसमें हैं। हम वही हैं। जैसे मछली सागर में है ऐसे हम जीवन में हैं। लेकिन मछली अगर सागर विरोधी हो जावे तो उसकी जो गति हो वही हमारी गति हो गई है। इसलिये मैं कहता हूं: "जीवन को प्रेम करो, क्योंकि जीवन की गहराईयों में परमात्मा का आवास है।"

★

"सत्य नहीं, खोजो स्वतंत्रता, और फिर स्वतंत्र चित्त में सत्य तो वैसे ही चला आता है जैसे सागर में सरितायें।"

सुरेन्द्रनगर, गुजरात में अपूर्व सत्संग :

आचार्यश्री की अमृतवाणी के पिपासु साधक जब तक आचार्यश्री को सुन न लें, तब तक निरन्तर उनकी प्रतीक्षा बनी रहती है। सुरेन्द्रनगर में भी ऐसी ही आतुर प्रतीक्षा आचार्यश्री की, प्रेमी साधकगण तथा जिज्ञासुगण कर रहे थे। जब आचार्यश्री का त्रिदिवसीय सत्संग २८, २९ तथा ३० नवम्बर को वहां आयोजित हुआ, तब तो वहां एक आनन्द की लहर व्याप्त हो गई। आचार्य श्री ने यहां कहा: "स्वतंत्रता है, सत्य प्राप्ति की अनिवार्य शर्त। जो चित्त स्वतंत्र है, वही सत्य तक ले जाने का सेतु बनता है: इसलिये मैं कहता हूं, सत्य मत खोजो, खोजो स्वतंत्रता। क्योंकि जहां स्वतंत्रता है वहां सत्य वैसे ही चला आता है, जैसे सागर में सरितायें चली आती हैं।"

★

"नारी की अमुक्ति का क्या अर्थ है? नारी अमुक्त है अर्थात् प्रेम ही कारागृह में है।"

महिला सभा में उद्‌बोधन :

नारी जीवन की अपनी अलग समस्यायें हैं। उनपर आचार्यश्री को सुनना महिलाओं का परम सौभाग्य है। इससे सुरेन्द्रनगर में २९ नवम्बर को मध्यान्ह में एक महिलाओं की सभा आयोजित की गई। यहां पर आचार्यश्री ने कहा: "नारी आज भी मुक्त नहीं है। और जब तक नारी पूर्ण मुक्त नहीं होती है, तब तक प्रेम ही जैसे कारागृह में है। और प्रेम ही जीवन का प्राण है।"

★

"नये के निर्माण के पूर्व पुराने को तोडना ही पडता है। वह आवश्यक और अनिवार्य है। लेकिन अकेला विध्वंश अर्थहीन और आत्मघाती है।"

सुरेन्द्रनगर में महाविद्यालयीन छात्रों के बीच :

३० नवम्बर के मध्यान्ह आचार्यश्री ने विद्यार्थियों की एक महती सभा को संबोधित किया। सभाभवन आचार्यश्री को सुनने के लिये आतुर छात्रों और

छात्राओं से खचाखच भरा था और सैकडों विद्यार्थियों की भीड सभाभवन के बाहर भी इकट्ठी थी। और फिर भी सभा में इतनी शांति थी कि ख्याल ही नहीं आता था कि यह विद्यार्थियों की सभा है। आचार्यश्री के व्यक्तित्व का प्रभाव और आकर्षण बूढों और बच्चों सब पर ही एक समान है। उन्होंने यहां कहा: "मैं छात्रों के विद्रोही रूख को देखकर अत्याधिक आनंदित हूं। लेकिन अभी यह विद्रोह नकारात्मक ही है। इसे विधायक भी बनाना है। नकारात्मकता भी आवश्यक और अनिवार्य है। नये के निर्माण के पूर्व पुराने को तोडना ही पडता है। लेकिन अकेला विध्वंश आत्मघाती और अर्थहीन हो जाता है। उसकी सार्थकता उसके पीछे आनेवाले सृजन में ही है और हो सकती है।"

★

"जीवन अति में नहीं, समन्वय में है। न अकेला अध्यात्म पर्याप्त है, न अकेली भौतिकता. अति रोग है और उससे सावधान होना आवश्यक है।"

राजकोट में विशाल जनसभायें :

आचार्यश्री के गुजरात प्रदेश के नगर नगर तथा स्थान स्थान पर जो भी कार्यक्रम आयोजित होते हैं, उनको देखते ही बनता है। सभी वर्गों के, सभी उम्रों के व्यक्ति उनमें भाग लेते हैं। और एक अद्‌भुत रम्य वातावरण बनता है जो कि जीवन के अलौकिक संगीत को प्रगट करता है। राजकोट में आचार्यश्री के १ दिसम्बर को सुबह तथा संध्या दो विशाल जनसभायें आयोजित की गई थीं। जनसभाओं में आचार्यश्री ने कहा: "भारत का भविष्य उज्जवल हो सकता है। लेकिन कुछ भूलों से हमें मुक्त हो जाना चाहिये। जैसे हमारी जीवनदृष्टि अधूरी और एकांगी है। हमारी दृष्टि पर अध्यात्म इस भांति छा गया है कि जैसे उसने विज्ञान के लिये जगह ही नहीं छोडी है। जीवन शरीर भी है और आत्मा भी, और इन दोनों के संतुलन में ही सत्य है। पश्चिम एक अति से पीडित है और हम दूसरी अति से. वह भौतिकवाद से पीडित है और हम अध्यात्मवाद से। जबकि पूर्ण संस्कृति दोनों की एकता और मिलन और समन्वय से ही जन्म पा सकती है।"

★

"व्यक्ति के तल पर चाहिये शांति और समाज के तल पर क्रांति"

सौराष्ट्र जीवन जागृति केन्द्र के कार्यकर्त्ताओं के मध्य आचार्यश्री की उद्‌घाषणा :

सौराष्ट्र प्रदेश के जीवन जागृति केन्द्र के कार्यकर्ताओं की एक विशाल संगोष्ठी

आचार्यश्री के सान्निध्य में संपन्न हुई। आचार्यश्री ने कहा: "व्यक्ति आज अपनी आंतरिक गरिमा से टूट गया है। उसके भीतर की जडें विलग हो गई हैं। साथ ही बाह्य जीवन की अभिव्यक्ति में भारत का व्यक्ति, जीवन की समस्याओं के प्रति नींद में खो गया है। ये दोनों ही स्थितियां आत्मघाती हैं। इसीसे भारत का व्यक्ति आंतरिक गरिमा से हीन तथा बाह्य जीवन की समस्याओं के प्रति उदासीन, थका तथा हारा हुआ हो गया है। व्यक्ति को अपनी आंतरिक जीवन साधना के द्वारों की ओर उन्मुख होकर अपने जीवन के अंतरंग शांति के स्रोतों से जुडना आवश्यक है और समाज की बाह्य जीवन की समस्याओं के प्रति एक क्रांति की दृष्टि होना जरूरी है। इससे मैं कहता हूं व्यक्ति के तल पर शांति और समाज के तल पर क्रांति ही भारत के भाग्य को पुनः उदित कर सकती है।"

★

"भारत को चाहिये वैज्ञानिक जीवनदृष्टि . . . तभी केवल उसका भविष्य उज्जवल हो सकता है।"

जीवन जागृति केन्द्र जबलपुर की मासिक जनसभा में :

जीवन जागृति केन्द्र जबलपुर की मासिक जनसभा ७ दिसंबर को शहीद स्मारक भवन में आयोजित हुई। जनसभा में अपने मौलिक तथा क्रांतिकारी विचार अभिव्यक्त करते हुये आचार्यश्री ने कहा: "भारत अभी भी जीवन के प्रति विश्वास की धारणा को लेकर चलता है। विश्वास की धारणा ने भारत के जनमानस को अंधश्रद्धालु बना दिया है। परिणामतः भारत ने जीवन की समस्याओं के प्रति कोई वैज्ञानिक जीवनदृष्टि को विकसित नहीं किया है। आज भी भारत यदि विश्वास की धारणा को लेकर ही चलता रहा तो उसका कोई भविष्य संभव नहीं हो सकता है। जीवन में विश्वास नहीं चाहिये वैज्ञानिक जीवन दृष्टि और तब ही केवल भारत का भविष्य विकसित हो सकता है।"

★

"मनुष्य क्या खोज रहा है? कौनसी संपदा के लिये सारी दौड चल रही है? काश! उसे पता हो कि वह जो चाहता है, सब उसमें ही छिपा है।"

जालंधर में त्रिदिवसीय सत्संग :

पंजाब प्रदेश में जालंधर म आचार्यश्री का १५, १६, १७ तथा १८ दिसंबर को त्रिदिवसीय सत्संग आयोजित किया गया। सत्संग में सुबह तथा शाम को प्रति-

दिन दो प्रवचन आयोजित किये जाते और मध्यान्ह में आचार्यश्री के सान्निध्य में ध्यान का प्रयोग होता. आचार्यश्री ने सत्संग के मध्य कहा: "स्वयं से भागो नहीं, जागो। क्योंकि जो व्यक्ति स्वयं से ही भागता रहता है, वह कहीं भी नही पहुंचता है। और पहुंच भी कैसे सकता है? क्योंकि स्वयं से भागने से ज्यादा असंभव और क्या है? भागने की पलायनवादी वृत्ति अनेक जीवनों को व्यर्थ ही मिट्टी में मिला देती है। लेकिन जो स्वयं के प्रति जागता है, वह निश्चय ही जीवन संपदा का प्रभु हो जाता है। क्योंकि, जिसे हम खोज रहे हैं वह स्वयं में ही छिपा है।"

★

"जीवन है एक कला। जीवन बना बनाया नहीं मिलता है। उसे तो निर्मित करना होता है। और जो इस सत्य को भूल जाते हैं, उनका जीवन व्यर्थ हो जाता है।"

जालंधर में विद्यार्थियों की सभाओं में उद्‌बोधन :

जालंधर के युवा विद्यार्थियों के मध्य आचार्यश्री के १५ तथा १६ दिसंबर के मध्यान्ह में प्रवचन आयोजित किये गये। उन्होंने कहा: "जीवन एक कला है। जीवन जन्म से ही नहीं मिल जाता है। उसे तो स्वयं ही निर्मित करना होता है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं का सृष्टा है। जो जीवन के इस केन्द्रीय तथ्य को भूल जाते हैं, वे एक अविकसित बीज ही रह जाते हैं। बीज जैसे एक संभावना मात्र है। ऐसे ही जन्म भी एक संभावना है। बीज को ठीक भूमि, खाद, पानी तथा रोशनी मिले तो वह अंकुरित होता है, पल्लवित होता है और पुष्पित होता है। ऐसी ही स्थिति जीवन की भी है।"

★

"प्रत्येक व्यक्ति है अतुलनीय और अद्वितीय. वह वही है, जो है। और वह कोई अन्य नहीं, बस स्वयं ही होने को पैदा हुआ है। जो उसे अन्योंसे प्रतिस्पर्धा में नहीं, वरन् आत्मविकास में ले जाये वही सम्यक् शिक्षा है।"

सिवनी मिशनरी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में :

सिवनी मिशनरी हायर सेकेन्डरी विद्यालय में आचार्यश्री ने २४ दिसंबर को वार्षिक स्नेह सम्मेलन का उद्‌घाटन किया। अपने उद्‌घाटन प्रवचन में आचार्यश्री

ने कहा:" वह शिक्षा अशिक्षा से भी बदतर है जो कि शिक्षार्थीके चित्त को महत्वाकांक्षा के ज्वर में दीक्षित करती है। क्योंकि महत्वाकांक्षा के अतिरिक्त आत्मा का और कोई रोग नहीं है। शेष सब रोग तो शरीर के हैं। लेकिन महत्वाकांक्षा आत्मा का रोग है। और तथाकथित शिक्षा आजतक इस रोग की, इस ज्वर की, इस विक्षिप्तता की अग्नि में घी का ही कार्य करती रही है। उसने सब भांति महत्वाकांक्षा की इस विक्षिप्तता को प्रज्जवलित ही किया है। और परिणाम में हमें यह सभ्यता उपलब्ध हुई है, जिसका मूल स्वर हिन्सा और युद्ध और विनाश के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। महत्वाकांक्षी मनुष्यता अंततः सार्वलौकिक आत्मघात के निकट आकर खडी हो गई है। यदि इस आत्मघात से मनुष्य जाति को बचाना हो तो शिक्षा में आमूल और तात्कालिक परिवर्तन जरुरी है। शिक्षा को गैरमहत्वाकांक्षी बनाना आवश्यक है। लेकिन शायद ईर्ष्या और द्वेष के द्वारा अहंकार को त्वरा देने के अतिरिक्त हम मनुष्य के विकास का कोई और मार्ग जानते ही नहीं हैं। जबकि मार्ग है। और जिसे मार्ग कहते हैं, वह तो कोई मार्ग ही नहीं है। वह तो एक प्रकार का पागलपन है, जिसमें दौडना तो बहुत होता है, लेकिन पहुंचना बिल्कुल भी नहीं। सम्यक् शिक्षा, प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या द्वेष और अहंकार पैदा नहीं कर सकती है। वह तो प्रत्येक में जो छिपा है, उसे प्रगट करने का अवसर ही बनेगी। वह दूसरे से होड नहीं, वरन् स्वयं का विकास सिखायेगी। वह प्रतिस्पर्धा की नहीं वरन् आत्म अतिक्रमण की सीख होगी। वह प्रत्येक व्यक्ति के अनूठेपन और अतुलनीय अद्वितीयता के आधार पर निर्मित होगी और उसे वह वही बनने की ओर गतिमय करेगी जो कि वह बनने को पैदा हुआ है।"

★

"दुख नहीं, चाहिये आनन्द, अंधकार नहीं, चाहिये आलोक। तो हो जाओ शांत और मौन और शून्य क्योंकि चित्त की पूर्ण विश्रांति में ही उसका अवतरण होता है जो कि अमृत है।"

नागपुर में त्रिदिवसीय सत्संग आयोजित :

नागपुर में आचार्यश्री के अमृत प्रवचन, जीवन जागृति केन्द्र द्वारा आयोजित किये गये। २५, २६ तथा २७ दिसंबर को तीन दिवसों तक नागपुर तथा महाराष्ट्र प्रदेश के जिज्ञासु नागरिकों ने आचार्यश्री के प्रवचन सुनकर अपने जीवन का मार्ग प्रशस्त किया। प्रतिदिन सुबह तथा शाम विश्वविद्यालय कान्होकेशन हाल में

आचार्यश्री के प्रवचन आयोजित किये गये। उन्होंने यहां कहा: "मनुष्य के जीवन में मूल दुख क्या है? अशांति और तनाव। और अशांति और तनाव क्यों है? क्योंकि हम चित्त को विश्राम देना ही भूल गये हैं। शरीर तो विश्राम करता भी है लेकिन चित्त को तो कोई विश्राम ही नहीं है। उसे तो हम निरंतर ही जीवन के कोल्हू में जोते रखते हैं। और कोल्हू के बैल भी रात्रि को विश्राम करते हैं। लेकिन चित्त तो रात्रि भी सपनों में सक्रिय रहता है.....वह तो रात्रि में भी क्रोध करता है, भयभीत होता है, चिन्तित होता है। चित्त पर यह अतिभार ही व्यक्तित्व के समस्त संगीत को नष्ट कर देता है। और फिर ऐसा क्लांत और थका हुआ मन सत्य को या स्वयं को जानने में भी असमर्थ हो जाता हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। इसलिये मैं एक ही सलाह देता हूं.... एक ही मेरी शिक्षा है, और वह है चित्त को विश्राम देने की। जितना हो सके चित्त को विश्राम दें। .....उसे खाली छोड़े. क्रिन्हीं क्षणों में चित्त को चुपचाप देखते रहें.....बस देखते रहें। और देखते देखते ही वह शांत हो जाता है। और फिर एक दिन जब वह पूर्ण शांति में होता है तब उसके दर्शन होते हैं जो कि वस्तुतः है। वही मैं हूं.....वही सर्व है.....वही सत्य है.....वही प्रभु है। और यह अनुभूति समग्र जीवन को आमूल ही बदल जाती है। जहां दुख था, वहां आनन्द और जहां मृत्यु थी वहां अमृत का आगमन हो जाता है।"

★

"धर्म का रहस्य पूछना है, तो पूछो बीज से.....पूछो बूंद से? बीज मिटता है तो वृक्ष बन जाता है और मनुष्य भी क्या एक बीज नहीं है? बूंद मिटती है तो सागर हो जाती है। और मनुष्य भी क्या एक बूंद नहीं है?"

नवीरा महाविद्यालय काटोल में प्रवचन :

२५ दिसंबर के मध्यान्ह आचार्यश्री काटोल में महाविद्यालय के आमंत्रण पर छात्रों तथा प्राध्यापकों को संबोधित करने पधारे। उन्होंने यहां कहा:"मैं तो एक ही मार्ग जानता हूं, जीवन को पाने का। मैं तो एक ही द्वार जानता हूं: प्रभु के मंदिर का। और आप पूछते हैं कि वह मार्ग क्या है.....वह द्वार क्या है? वह मार्ग है स्वयं को मिटा देने का। वह द्वार है शून्य हो जाने का। और मेरी बात का भरोसा न हो तो पूछो बीज से.....पूछो बूंद से। मैंने उन्हीं से पूछा है और जाना है। बीज वृक्ष हो जाता है। बूंद सागर

हो जाती है। क्या आप परमात्मा होना चाहते हैं? तो मार्ग वही है....द्वार वही है जो कि बीज का है। जो कि बूंद का है। मिटो ताकि पा सको। खो दो ताकि खोज सको। आह! कितनी सुगम है बात लेकिन अहंकार को खोने का तो हमें स्मरण ही नहीं आता है।"

★

"अपराध करने में व्यक्ति पूर्ण दोषी नहीं है, समाज की व्यवस्था उसके लिये उत्तरदायी है।"

सिवनी सुधारालय में उद्‌बोधक प्रवचन :

शासकीय सुधारालय सिवनी के आमंत्रण पर आचार्यश्री २८ दिसंबर की सुबह बोलने पधारे। अपने क्रांतिकारी तथा उद्‌बोधक प्रवचन में आचार्यश्री ने कहा: "कोई बच्चा चोरी करता है, तो इसमें समझना चाहिये कि चोरी उसने क्यों की? हमारे समाज की व्यवस्था ने उसे चोरी करने को बाध्य किया। और जबतक समाज की आमूल व्यवस्था में हम परिवर्तन नहीं लाते हैं, तबतक कोई भी सुधार के उपाय काम में लाये जायें, चोरी को बंद नहीं किया जा सकता है। और बडा मजा तो यह है कि छोटी चोरी को चोरी मानकर समाज में दंडित किया जाता है लेकिन जो बडी चोरी प्रतिदिन शोषण के द्‌वारा हमारे समाज में हो रही है, उसे कोई दंड नहीं है। और जबतक शोषण की इस व्यवस्था को बदला नहीं जाता है, तबतक कोई स्वस्थ हल समाज के विकास के लिये संभव नहीं है। लेकिन समाज की व्यवस्था में ऐसा कोई परिवर्तन जबतक नहीं आता है, तबतक व्यक्ति को अपनी ओर देखना चाहिये और स्वयं में परिवर्तन के बीज डालना आवश्यक है।"

★

"शब्दों में नहीं, तथ्यों में जो कौम सोचती है, केवल उसका ही भविष्य बनता है:"

जबलपुर जीवन जागृति केन्द्र में :

२९ दिसंबर को आचार्यश्री ने जबलपुर जीवन जागृति केन्द्र के अंतर्गत आयोजित मासिक प्रवचन में "क्या भारत का पुनर्जन्म हो सकता है?" विषय पर बोलते हुये कहा : "भारत पिछले हजारों वर्षों से केवल शब्दों में ही सोचता रहा

है। शब्दों में सोचने के कारण भारत की समस्यायें हल न हो सकीं, वरन् और उलझती चली गई। आज भारत की जो दीन हालत हुई है, उसके लिये उसकी पिछली जीवनदृष्टि उत्तरदायी है। और अगर आजभी हम शब्दों की भाषा में ही सोचते चले गये तो भारत का पुनर्जन्म नहीं हो सकता है। लेकिन शब्दों के स्थान पर यदि हमने अपनी समस्याओं को तथ्यों से सोचना शुरु कर दिया तो परिणाम अच्छे आ सकते हैं और भारत का पुनर्जन्म हो सकता है। जैसे हम बच्चों के पैदा होने का मामला ले लें। तो शब्दों में सोचनेवाला कहेगा कि बच्चे तो भगवान की देन हैं। लेकिन तथ्यों में जाननेवाला कहेगा कि बच्चे पैदा न करना सीधी मेडीकल साइन्स की बात है और जो भी मेडीकल साइन्स का प्रयोग करेगा वह बच्चों के पैदा होने को रोक सकेगा। भारत में इस तरह की तथ्यों की वैज्ञानिक जीवनदृष्टि को विकसित करना है तभी केवल भारत का पुनर्जन्म हो सकता है।"

★

"संकल्पपूर्ण सृजनात्मक जीवनदृष्टि युवकों के लिये जीवन निर्माण की ओर ले जायेगी!"

जबलपुर विश्वविद्यालय में युवक विद्यार्थियों के मध्य प्रवचन :

जबलपुर विश्वविद्यालय विद्यार्थी छात्रसंघ की ओर से ८ तथा ९ जनवरी को आचार्यश्री के "युवा पीढी और उसका भविष्य" विषय पर प्रवचन आयोजित किये गये। अपने सृजनात्मक तथा क्रांतिकारी प्रवचन में आचार्यश्री ने कहा: "युवकों को अपनी शक्ति जीवन के बडे प्रश्नों में लगाना चाहिये। आज युवकों के सामने बडे प्रश्न हैं। युवकों को धर्मों के विशेषणों को गिरा देना है। कोई धर्म हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई कैसे हो सकता है? धर्म तो केवल धर्म है। दूसरे, युवकों को हिम्मत करना चाहिये एक जीवित कौम के होने की। भारत की कौम इतनी मरती मरती सी जीती है, कि लगता है कि इसका जीवन बुझा बुझा सा हो गया है। और कोई कौम जीती कब है? जब उसके युवा, जीवन में मरने से न डरते हों। लेकिन भारत आत्मा की अमरता की थोथी बातें भर करता है, उससे ज्यादा मृत्यु से भयभीत कौम पृथ्वी पर खोजना मुश्किल है। अतः जीवन को जीने के लिये मृत्यु का साहस जुटा पाना जो कौम सीख लेती है, वही भर केवल जीवित रह पाती है। तो भारत के युवकों के सामने जीवन के जिन्दा होने का

परिचय देने का महत्वपूर्ण कार्य है। युवक अपनी शक्ति का जीवन को निर्माण करने की दिशा में प्रयोग करेंगे, तो ही भारत का भविष्य समृद्धशाली हो सकता है।"

★

"आत्मघात या आत्मक्रांति? मनुष्यता को निर्णय लेना है: आत्मघात या आत्मक्रांति? और अन्य तीसरा कोई विकल्प ही नहीं है।"

भारतीय संस्कृति संसद कलकत्ता में उद्‌बोधक प्रवचन :

आचार्यश्री भारतीय संस्कृति संसद के आमंत्रण पर ११ तथा १२ जनवरी को कलकत्ता पधारे। यहां पर आचार्यश्री के सान्निध्य में भारतीय संस्कृति संसद में दो क्रांतिकारी प्रवचन तथा महिला मंडल में एक विशेष कार्यक्रम तथा साहु शांतिप्रसाद जी के निवासस्थान पर एक विशेष गोष्ठी का आयोजन किया गया। आचार्यश्री ने यहां पर संबोधित करते हुये कहा: "मनुष्य का अतीत हिन्सा, क्रूरता और युद्धों की कथा रहा है। और हमने अपने इस मूर्खतापूर्ण इतिहास से कोई भी सीख नहीं ली है। मनुष्य वैसा का वैसा है। उसमें कोई मौलिक क्रांति नहीं हुई है। लेकिन अब या तो मनुष्य को आमूलत: बदलना होगा या नष्ट होना पडेगा। क्योंकि विज्ञान ने उसके हाथों में ऐसी शक्ति दे दी है कि वह हिन्सक रहकर अब आत्मघात से नहीं बच सकता है। मैं आशा करता हूं कि यह स्थिति निश्चय ही अहिन्सक मनुष्यता के जन्म की चुनौती बनेगी। क्योंकि अब तक मनुष्य हिन्सक था, वह सोचता था कि बिना हिन्सक हुये जीवन की रक्षा असंभव है। अब स्थिति आमूलत: उल्टी हो गई है। अबतो अहिन्सक हुये बिना बचना असंभव है।"

★

"मिटो ताकि पा सको. खो जाओ ताकि खोज सको। क्योंकि शून्य हो जाना ही पूर्ण को पा लेने की एकमात्र शर्त है।"

अमरावती में त्रिदिवसीय सत्संग :

१८, १९ तथा २० जनवरी को अमरावती में आचार्यश्री के पवित्र सान्निध्य को पाने के लिये त्रिदिवसीय सत्संग का आयोजन किया गया। सत्संग में आचार्यश्री ने कहा: "धर्मों में धर्म नहीं है। और जिसे धर्म को पाना है, उसे धर्मों से मुक्त

होना पडता है। धर्म तो एक है, क्योंकि सत्य एक है। और इस सत्य को पाने की शर्त भी एक है। वह है स्वयं को मिटा देना। अहंकार जहां नहीं है, वहीं सत्य प्रत्यक्ष हो उठता है. शून्यभाव की पृष्ठभूमि में ही पूर्ण के हस्ताक्षर उपलब्ध होते हैं. इस शून्यभाव को ही मैं ध्यान कहता हूं।"

★

अहंकार चाहते हो तो आनन्द न चाहो। अहंकार चाहते हो तो आलोक न चाहो. अहंकार चाहते हो तो आत्मा न चाहो। क्योंकि जहां अहंकार है वहां आनन्द, आलोक या आत्मा की उपलब्धि असंभव है।"

हींगनघाट नवयुवक मंडल में प्रवचन :

आचार्यश्री का हींगनघाट में २१ जनवरी को प्रथम आगमन था। लेकिन आचार्यश्री के आगमन की खबर बिजली की भांति सारे नगर में फैल गई और हजारों लोगों ने आचार्यश्री को सुनकर जीवन के अंतरंग आनन्द की ओर दिशा पाई। आचार्य श्री ने यहां कहा: "अहंकार है दुःख, अहंकार है पीडा; अहंकार है संताप। लेकिन हम उसमें ही जीते हैं। हमने जैसे अंधकार में ही जीने का निश्चय कर लिया है और फिर हम प्रकाश के लिये भी रोते हैं। अहंकार में जीना है तो फिर आलोक मत मांगो, आनन्द मत मांगो, आत्मा मत मांगो। क्योंकि दोनों को एक ही साथ नहीं पाया जा सकता है। क्या यह विरोधाभास आपको दिखाई नहीं पडता है?

★

"प्रभु क्या है? प्रभु जीवन है। जीवन ही प्रभु है। जीवन का, जीवन्तता का ही तो वह दूसरा नाम है।"

पुलगांव महाविद्यालय में प्रवचन :

आचार्यश्री २१ जनवरी की मध्यान्ह पुलगांव पधारे। यहां पर महाविद्यालय में उनका प्रवचन आयोजित था। अपने प्रवचन में उन्होंने कहा: "जो परमात्मा को खोजने मंदिरों में जाता है, उसे पता ही नहीं है कि परमात्मा वहां नहीं है। मनुष्य द्वारा निर्मित मंदिर इतने छोटे हैं कि परमात्मा उनमें कैसे समा सकता है? उसे पाना है तो दीवारों से बंद कारागृहों में नहीं, वहां

खोजो जहां दीवारें नहीं हैं, सीमायें नहीं हैं, वहां जहां कि अनन्त विस्तार है। जीवन के विस्तार में, जीवन की असीमता में, जीवन की अनंतता में छिपा वह आपकी प्रतीक्षा कर रहा है। जीवन में ही खोजो उसे। क्योंकि वह जीवन का, जीवन्तता का ही तो दूसरा नाम है।"

★

"परमात्मा को पाये बिना जीवन से दुख नहीं जा सकता है....परमात्मा तो एक अनन्त अतृप्ति है।"

जी. सी. एफ. जबलपुर जीवन जागृति उपकेन्द्र का उद्घाटन :

आचार्यश्री के सान्निध्य में २६ जनवरी को मध्यान्ह २.३० बजे जबलपुर नगर का जी. सी. एफ. जीवन जागृति उपकेन्द्र का उद्घाटन संपन्न हुआ। अपने उद्घाटन में आचार्यश्री ने "व्यस्त: जीवन में परमात्मा से साक्षात्कार" "विषय पर बोलते हुये कहा:" मनुष्य शरीर, मन और आत्मा का जोड है। शरीर और मन के तल पर जीकर मनुष्य अपने जीवन के दुखों से मुक्त नहीं होता है। और ये दुख तबतक साथ बने रहते हैं जबतक मनुष्य का अस्तित्व परमात्मा में विलीन नहीं हो जाता है। परमात्मा में होकर ही व्यक्ति परम कृतार्थता का अनुभव करता है। परमात्मा में व्यक्ति जी सकता है यदि वह अपने जीवन की छोटी से छोटी क्रिया में होश का, जागरूकता का या ध्यान का प्रयोग करे। और तभी केवल व्यक्ति के जीवन में आनन्द होता है। यह आनंद का बोध जबतक व्यक्ति को न हो तब तक एक अतृप्ति बनी ही रहती है।"

★

(शेष पृष्ठ २ से आगे)

दिनाक:	स्थान:	कार्यक्रम:	संयोजक.
२३, २४ तथा २५ अप्रेल. ६९.	अमृतसर.	सत्संग.	श्री चमनलालजी अग्रवाल. २५, केनेडी एवेन्यू, **अमृतसर.**
५, ६ तथा ७ मई. ६९.	कोल्हापुर.	सत्संग.	श्री हरिश्चंद्र मेहता. महाद्वार रोड. **कोल्हापुर:२.**
८ तथा ९ मई. ६९	पूना.	प्रवचन.	श्री माणिकलाल बाफना. जीवनजागृति केन्द्र, स्पार्टन लग्झुरी, सी. १,२४७:१४, बी. परोडा, **पूना:६.** फोन: २४११४.
१७, १८ १९ तथा २० मई. ६९.	इन्दौर.	सत्संग.	श्री एल. एस. आचार्य, मंत्री: जीवन जागृति केन्द्र, मेहता चेम्बर्स, ३४, सियागंज, **इन्दौर. म. प्र.**
२० तथा २१ मई. ६९.	भोपाल.	प्रवचन.	श्री निर्मलजी भंडारी. अध्यक्ष:जैनसांस्कृतिक संस्था, प्रेमभवन, हनुमानगंज, **भोपाल.**
३०, ३१ मई तथा १ एवं २ जून. ६९.	बंबई क्रास मैदान.	प्रवचन.	श्री मंत्री : जीवनजागृति केन्द्र, २९, ईस्टर्न चेम्बर्स, १२८, पूनास्ट्रीट, आरगायल रोड. **बंबई. ९.**
३, ४, ५ तथा ६ जून. ६९.	उदयपुर.	साधनाशिबिर.	श्री हीरालालजी कोठारी, जीवनजागृति केन्द्र. दांता भैरु, कुम्हारवाडा. **उदयपुर. (राज.)**

Statement about ownership and other particulars about Newspaper 'JYOTI SHIKHA' to be published in the First issue every year after last day of February.

FORM IV
(See Rule 8)

1. Place of Publication	Bombay
2. Periodicity of its Publication	Quarterly
3. Printer's Name	P. L. Maheshwari
Nationality	Indian
Address	Jeevan Jagruti Kendra, 3rd Fl., 128-A, Eastern Chambers, Bombay-9.
4. Publisher's Name	P. L. Maheshwari,
Nationality	Indian
Address	Jeevan Jagruti Kendra, Eastern Chambers, 128-A, Poona St., Bombay-9.
5. Editor's Name	Prof. Arvindbhai
Nationality	Indian
Address	Acharya Shree Rajnish, Kamla Nehru Nagar, Jabalpur (M.P.)
6. Name and address of individuals who own the newspaper and partners or shareholders holdings more than one percent of the total capital.	Jeevan Jagruti Kendra, 29, Eastern Chambers, 3rd Fl., 128-A, Poona St., Bombay-9.

I, P. L. Maheshwari, hereby declare that the particulars given above are true to the best of my knowledge and belief.

P. L. Maheshwari
Signature of Publisher

Date: 20-3-1969.

मुद्रक प्रकाशक : श्री पी. एल. मैशेरी, जीवन जागृति केन्द्र, १२८ ईस्टर्न चेम्बर्स, पूना स्ट्रीट, बंबई–नं. ९। मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, कोट, बम्बई १।

मौन साधना—नारगोल शिबिर

१२

मनुष्य क
पुनरुत्थान
मनुष्यके आध्यात्मि
आध्यात्मिक पुनरुत्थान क स
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्याति
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्था
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥
ाध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरुत्
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्याति
लिए समर्पित ॥ मनुष्यके आ
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ।
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्या
पुनरुत्थानके लिए समर्पित
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरु
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्या
लिए समर्पित ॥ मनुष्यके आ
पुनरुत्थानके लिए समर्पित ॥
आध्यात्मिक पुनरुत्थानके लि
समर्पित ॥ मनुष्यके आध्य
मनुष्यके आध्यात्मिक पुनरु
पुनरुत्थानके के लिए सम
समर्पित ॥ मनुष्यके आ
लिए स

जीवन जागृति केन्द्र